ध्यान और समाधि

ओशो के श्री चरणों में समर्पित

स्वामी शैलेन्द्र सरस्वती

संपादकीय

यह किताब क्यों?

यूनान के महान संत सुकरात, हर सुबह घर से निकलने के पहले आईने के सामने खड़े होकर खुद को कुछ देर तक तल्लीनता से निहारते थे। उनकी पत्नी ने नाराजगी में एक बार उनके चेहरे पर खौलता पानी डाल दिया था जिससे उनका आधा चेहरा जल गया था। जिंदगी भर उनकी त्वचा पर जलने के चिह्न बने रहे।

एक दिन उनके एक शिष्य ने उन्हें ऐसा करते देखा। आईने में खुद की छवि को निहारते सुकरात को देख उसके मुख पर बरबस ही मुस्कान तैर गयी।

सुकरात उसकी ओर मुड़े और बोले, 'बेशक, तुम यही सोचकर मुस्करा रहे हो न कि यह कुरूप बूढ़ा आईने में खुद को इतनी बारीकी से क्यों देखता है? और मैं ऐसा हर दिन ही करता हूँ'।

शिष्य यह सुनकर लज्जित हो गया और सर झुकाकर खड़ा रहा। इससे पहले कि वह माफी मांगता, सुकरात ने कहा, 'आईने में हर दिन अपनी छवि देखने पर मैं अपनी कुरूपता के प्रति सजग हो जाता हूँ। इससे मुझे ऐसा जीवन जीने के लिए प्रेरणा मिलती है जिसमें मेरे सद्गुण इतने निखरें और दमकें कि उनके आगे मेरे मुखमंडल की कुरूपता फीकी पड़ जाए। इस हेतु मैं अपनी पत्नी के प्रति धन्यवाद भाव से भर जाता हूं।'

शिष्य ने कहा, 'तो क्या इसका अर्थ यह है कि सुन्दर व्यक्तियों को आईने में अपनी छवि नहीं देखनी चाहिए?' 'ऐसा नहीं है' सुकरात ने कहा, 'जब वे स्वयं को आईने में देखें तो यह अनुभव करें कि उनके भाव, विचार, वाणी और कर्म उतने ही सुन्दर हों जितना उनका शरीर है। वे सचेत रहें कि कहीं उनके मूर्च्छित कर्मों की छाया उनके प्रीतिकर व्यक्तित्व पर न पड़ जाए!'

विवेकपूर्ण व्यक्ति हर स्थिति में से सत्यं–शिवं–सुंदरं की ओर अग्रसर होने का मार्ग खोज ही लेता है। ऐसी प्रज्ञा, ऐसी समझ ही वास्तविक सौंदर्य है। चेतना में ऐसी सुंदरता हो तो देह की कुरूपता भी फीकी हो जाती है। लेकिन केवल त्वचा की सुंदरता, आत्मा की कुरूपता को नहीं ढांक पाती। प्रायः शारीरिक रूप से खूबसूरत व्यक्तियों में बड़ा बदसूरत घमंड होता है। वह देहाभिमान उनके जीवन को, एवं उनके आसपास रहने वालों के जीवन को विषाक्त कर देता है। सद्बुद्धि के अभाव में अमृत भी जहर बन जाता है। और, सद्बुद्धि के प्रभाव में जहर भी अमृत बन जाता है।

कैसे वह आंतरिक सौंदर्य, विवेक–बुद्धि, चैतन्यता जागे? कैसे कोई व्यक्ति विषैली जिंदगी को अमृतमय करे? ध्यान में डूबकर क्रमशः समाधि की ओर गति करने से ऐसा चमत्कार संभव है। ओशो शैलेन्द्र जी के इस प्रवचन संकलन को पढ़कर, मनन कर, पाठक के हृदय में भी प्रेरणा उत्पन्न होगी कि वे इस राह पर चलें, ध्यान के प्रयोगों में उतरें। इसी आशा के संग आपके हाथों में दे रहे हैं, आध्यात्मिक संपदा की कुंजी– यह अनूठी पुस्तक!

–मा ओशो प्रांजलि, संपादिका

भूमिका

ध्यान द्वारा कौन सी समस्या हल होगी?

बुद्ध की ख्याति सुनकर एक व्यक्ति अपनी समस्याओं के समाधान के लिए उनके पास गया। जैसा हम सबके जीवन में प्रायः होता है, वह भी अनेक कठिनाइयों का सामना कर रहा था। उसे लगा कि बुद्ध उसे मुश्किलों के दलदल से बाहर निकलने का उपाय बता देंगे। उसने बुद्ध से कहा, 'मैं किसान हूँ। लेकिन कभी वर्षा पर्याप्त नहीं होती और मेरी फसल बर्बाद हो जाती है। और फिर कभी ऐसा भी होता है कि बहुत अधिक वर्षा हो जाती है और फसल को नुकसान पहुँचता है'।

बुद्ध शांतिपूर्वक उसकी बात सुनते रहे।

'मैं विवाहित हूँ', किसान ने कहा, 'वैसे तो मेरी पत्नी मेरा ध्यान रखती है। मैं उससे प्रेम करता हूँ। लेकिन कभी–कभी वह मुझे बहुत परेशान कर देती है। कभी मुझे लगने लगता है कि मैं उससे उकता गया हूँ'।

बुद्ध तब भी शांतिपूर्वक उसकी बात सुनते रहे।

'मेरे पांच बच्चे भी हैं', किसान बोला, 'यूं तो वे भले हैं। पर कभी–कभी मेरी आज्ञा नहीं मानते। और कभी तो...!'

किसान ऐसी ही बातें बुद्ध से कहता गया। वाकई उसके जीवन में बहुत सारी मुसीबतें थीं। अपना मन हल्का कर लेने के बाद वह चुप हो गया और प्रतीक्षा करने लगा कि बुद्ध उसे कुछ उपाय बताएँगे।

उसकी आशा के विपरीत, बुद्ध ने कहा, 'मैं तुम्हारी कोई मदद नहीं कर सकता'।

'यह आप क्या कह रहे हैं!' किसान ने हतप्रभ होकर कहा।

'सभी के जीवन में कठिनाइयाँ हैं' भगवान बुद्ध बोले, 'वास्तविकता यह है कि जीवन में एक नहीं, 99 कठिनाइयाँ हैं। मेरी, तुम्हारी, और यहाँ उपस्थित हर व्यक्ति की जिंदगी मुश्किलों से ग्रस्त है। कोई इन 99 समस्याओं का स्थायी समाधान नहीं कर सकता। यदि उनमें से किन्हीं एक का उपाय कर भी लो तो उसके स्थान पर तुरंत नयी समस्या खड़ी हो जाएगी। जीवन का भरोसा नहीं है। एक दिन तुम्हारे प्रियजन चल बसेंगे, तुम भी एक दिन नहीं रहोगे। किंतु समस्याएँ सदैव बनी रहेंगी और कोई भी उनको दूर करने के उपाय नहीं कर सकता'।

किसान क्रुद्ध होकर बोला, 'सब कहते हैं कि आप महात्मा हैं! मैं यहाँ इस आस में आया था कि आप मेरी कुछ सहायता करेंगे! यदि आप इतनी छोटी–छोटी बातों का उपाय नहीं बता सकते तो आपकी शिक्षाएं किस काम की?'

बुद्ध ने कहा, 'मैं सौवीं समस्या का समाधान कर सकता हूँ'।

'सौवीं समस्या?' किसान ने पूछा, 'वह क्या है?'

बुद्ध ने कहा, 'यह, कि तुम नहीं चाहते कि जीवन में कोई भी समस्या बचे। मैं एक–एक मुसीबत को, फुटकर हल करने का उपाय नहीं बताता। मैं थोक में, समस्याएं पैदा करने वाले मन के पार जाने की विधि समझाता हूं। निष्प्रश्न हो जाने की उस दशा को समाधि कहते हैं,

क्योंकि चेतना की उस निर्विचार अवस्था में परम समाधान घट जाता है। ध्यान उसका मार्ग है।'

आश्वासन है कि इस किताब में ओशो शैलेन्द्र जी के प्रवचनों को पढ़कर ध्यान का, समाधि का, समस्याओं के पार उठने का रास्ता दिख सकेगा। फिर राह पर चलना तो आपको है...! एक बार भीतर सुलझाव हो जाए तो फिर बाहरी उलझाव खुद-ब-खुद सुलझने लगते हैं। जैसे कई दरार पड़े हुए दर्पण में प्रतिछवियां टूटी-फूटी, एक की जगह अनेक नजर आती हैं, वैसे ही खंडित मनस्थिति में बनीं परिस्थितियों की छायाएं पहेलियों सी प्रतीत होतीं हैं। प्रतिबिम्बों को सीधा सुधारने का प्रयास असफल होने को बाध्य है। आधुनिक मनोविज्ञान इसी गोरखधंधे में फंस गया है। अध्यात्म छवियों को, छायाओं को हल नहीं करता; अखंड चेतना को जन्माता है, दर्पण को ठीक करता है।

आमंत्रण सुनो; समाधि की मंजिल पुकार रही है– स्वागत को तत्पर...!!

–मा मोक्षा

अनुक्रम

अध्याय-1

जीवन में प्रभु की खोज

1. यह धर्म की धारा ओशोधारा क्यों कहलाती है ?
2. भगवान को पाने हेतु समय कहाँ से निकालें ?
3. भविष्य को लेकर चिन्ताओं से ग्रस्त क्यों ?
4. महत्त्वाकांक्षा के रोग से परेशान हूं। क्या करूं ?

प्रश्नः यह धर्म की धारा ओशोधारा क्यों कहलाती है?

क्योंकि यह आध्यात्मिक धारा ओशो से निकली है। ओशो इसके स्रोत हैं, मूल उद्गम हैं। जैसे हिमालय में गंगोत्री से गंगा निकलती है, गंगा फिर कितनी ही दूर चली जाए लेकिन उसका मूल उद्गम तो गंगोत्री ही रहेगा और वह गंगा ही कहलाएगी। ठीक ऐसे ही ओशो एक नई धारा की शुरुआत हैं। एक नई परम्परा के प्रथम तीर्थंकर, प्रथम अवतार हैं। जैसे-जैसे समय बीतेगा, नित-नूतन जलधाराएं अपना पानी जोड़ती चलेंगी। यह धारा और विस्तीर्ण होती चली जाएगी। चूंकि ओशो इसके मूल उद्गम हैं इसलिए यह ओशोधारा ही कहलाएगी।

प्रश्नः भगवान को पाने की दौड़ हेतु समय कहाँ से निकालें? संसार में लोग पहले से ही इतने व्यस्त हैं। क्या कोई सरल उपाय नहीं हो सकता?

प्रभु हमसे पृथक, दूर नहीं, बल्कि हमारी ही आंतरिक सत्ता है। परमात्मा यानी परम+आत्मा, 'दि अल्टीमेट सेल्फ' आत्मा का परम रूप, स्वयं के होने की चरम अवस्था। उसे जानने के लिए केवल अंतर्मुखी होकर खुद के प्रति जागना है। दौड़ना नहीं, ठहरना है। कुछ नया पाना नहीं, बस जानना है, उसे जो मिला ही हुआ है।

भगवान कोई उपलब्धि या अचीवमेंट नहीं है, खुद के अंदर खुदा का अहसास, भगवत्ता का अनुभव, सेल्फ-रियलाइजेशन है। व्यस्तता और समय का सवाल नहीं, समयातीत अव्यस्तता, निष्क्रिय जागरूकता में डूबना उसकी विधि है।

मुझे याद आता है ओशो की एक किताब का शीर्षक- 'जीवन ही है प्रभु और न खोजना कहीं'। भगवत्ता जिंदगी का पर्यायवाची है। इसलिए खोजना नहीं, जीना है। पाना नहीं, पीना है।

ईश्वर की परंपरागत व्यक्तिवाची धारणा है कि कहीं दूर सातवें आसमान में, स्वर्ग में स्वर्ण-सिंहासन पर विराजमान है। इस तरह की बचकानी धारणा की वजह से इस प्रकार के निरर्थक प्रश्न पैदा होते हैं।

परमात्मा यानी ओंकार, अनाहत नाद। समाधि यानी अपनी अंतरात्मा के इस संगीत में डुबकी। इससे सुगम उपाय और क्या होगा? न मंदिर जाना है, न तीर्थस्नान करना है, न पूजा-पाठ या कोई अन्य क्रियाकांड करना है। बस, खुद के भीतर गूंजती खुदा की आवाज को, 'सदा-ए-आसमानी' को सुनना है। वह सदा, सदा ही मौजूद है। अलग से वक्त की जरूरत नहीं।

उसे पाना नहीं, केवल जानना है।

प्रश्नः अक्सर कहने—सुनने में आता है कि हर इन्सान को अपने जीवन में

किस्मत से ज्यादा नहीं मिलता, फिर भी प्रत्येक इन्सान वर्तमान से सुखी नहीं रहता और हर समय अपने भविष्य और परिवार के भविष्य को लेकर चिन्ताओं से ग्रस्त रहता है। ऐसा क्यों होता है?

क्योंकि यह केवल मानना है। तुम्हारा जानना नहीं। काश! अगर तुम इसे जानते, भीतर से यह तुम्हारा ज्ञान होता, तो भविष्य की चिन्ता की कोई जरूरत ही न रह जाती। तब तुम जानते कि भाग्य के अनुसार सब कुछ हो रहा है। आगे जो होना होगा सो होगा, उसकी चिन्ता क्यों करनी? लेकिन ये कही-सुनी बात है, पढ़ी-पढ़ाई बात है। किताबों में लिखा है कि किस्मत होती है। आपका स्वयं का ज्ञान नहीं है। इसलिए यह प्रश्न पैदा हो रहा है।

तुम पूछते हो कि कहने-सुनने में आता है कि भाग्य से ही सब कुछ होता है, फिर भी भविष्य की चिंता क्यों होती है? क्योंकि वह कहा-सुना है, तुम्हारा स्वयं का गुना हुआ अनुभव नहीं हैं। मैं चाहता हूं जो तुमने सुना है, पढ़ा है, उससे मुक्त हो जाओ। जीवन का सीधा साक्षात्कार करना सीखो। जिन्दगी जैसी है इसके सत्य को उघाड़ना सीखो। तुम एक खोजी बनो, एक साधक बनो, एक मानने वाले नहीं, अन्धविश्वासी नहीं। यह भाग्य की बात अंधविश्वास की बात है और इसलिए तुम ऊपर-ऊपर से तो भरोसा करते हो किस्मत में, ज्योतिष में और ग्रह-नक्षत्रों में, लेकिन भीतर-भीतर भविष्य की चिंता तुम्हें खाए जाती है। मैंने सुना है दो ज्योतिषी आमने-सामने रहते थे। सुबह बाजार जाने से पूर्व वे एक-दूसरे को अपनी हस्तरेखा दिखाते थे कि आज धंधा कैसा चलेगा? उन्हें भविष्य की चिंता रहती थी और अपने ज्ञान पर भरोसा भी नहीं था।

इस नासमझी और मूढ़ता से जागो। चेतो! जीवन जैसा है, वैसा ही देखो। किसी सिद्धांत और वाद को बीच में न लाओ। तुम स्वयं ही जानने की कोशिश करो कि क्या सच है? हाँ, अगर तुम स्वयं जानोगे कि चीजें पहले से सुनिश्चित हैं, तो तुम्हारी चिंता खो जाएगी। और अगर जानोगे कि सुनिश्चित नहीं हैं, तब भी तुम्हारी चिंता खो जाएगी। जब कुछ भी सुनिश्चित है ही नहीं तो चिंता किसकी करना? तब तुम वर्तमान के कर्म में रस लोगे। अभी जो क्षण मेरे हाथ में है, मैं इसको सुन्दर बना लूं, इसको प्रीतिपूर्ण बना लूं, इसको उत्सव और आंनद से भर लूं, यह तुम्हारी फिक्र होगी और तुम जानोगे कि कल जो भी होगा वह आज से ही तो निकलकर आयेगा।

आज के गर्भ से ही कल निकलेगा तो कल की क्या चिंता करना?

आज को संवार लो, आज को सुधार लो, बस इतना ही बहुत है। भविष्य की चिंता मिट जाएगी।

प्रश्नः भविष्य में इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए मैं बहुत परेशान रहता हूं। क्या करूं?

शायद उसे तुम ठीक से देखते नहीं जो मिला है। उसे भरपूर नजर देखो तो पाओगे कि बिना मांगे कितना मिला है! बिना मांगे जरूरत से बहुत ज्यादा मिला है। तब एक गहन संतोष तुम्हारे प्राणो में छा जाएगा। भविष्य की फिक्र अपने आप समाप्त हो जाएगी। जो व्यक्ति वर्तमान से जितना सन्तुष्ट हो जाता है, उसकी भविष्य के प्रति महत्त्वाकांक्षा उतनी ही कम हो जाती है। थोड़ा वर्तमान के प्रति जागो। तुम्हें कितना मिला हुआ है तुमने शायद अन्दाज नहीं लगाया। तुम जीवित हो, श्वास चल रही है, तुम्हारा हृदय धड़क रहा है.... तुमने कभी अस्तित्व को इसके लिए धन्यवाद दिया? यह प्यारा जीवन तुम्हें मिला.......और याद रखना बिना मांगे मिला! तुमने कभी ईश्वर के दफ्तर में आवेदन था कि हम धरती पर पैदा होना चाहते हैं? अचानक तुमने पाया कि एक दिन तुम इस सुन्दर धरती पर हो, इसमें तुम्हारा किया-धरा क्या है? एक दिन अनायास तुम्हारी श्वास चलने लगी। क्या तुमने श्वास ली? नहीं, श्वास चली, अपने आप चली। तुम्हारा हृदय धड़कने लगा, भोजन पचने लगा। ये चमत्कार कैसे हो रहा है कुछ जानते हो? मेडिकल साइंस इतनी विकसित हो गई लेकिन अभी तक ज्ञात नहीं हो पाया कि यह चमत्कार कैसे होता है! और न भविष्य में कभी पता चल पाएगा। यह चमत्कारिक शरीर रूपी वाहन हमें मिला है। बड़ा अद्‍भुत मन इस छोटी सी खोपड़ी में फिट है। यह दुनिया का सबसे जटिल कम्प्यूटर है। ऐसा अद्‍भुत कम्प्यूटर न कभी बना है, न बन सकेगा। हम देखते ही नहीं कि हमें क्या-क्या मिला है और हम उसके लिए तरसते रहते हैं जो नहीं मिला। काश! हम गौर से देख पाएं।

मैंने सुना है कि एक युवक नदी में कूदकर आत्महत्या करने जा रहा था। वहाँ एक साधु बैठा था। उसने रोका- मेरे भाई क्यों अपने प्राण गंवाते हो? युवक ने कहा- मैं बहुत त्रस्त हूं इस दुनिया से, अपने जीवन से, क्योंकि मेरे पास कुछ भी नहीं है। मैं निहायत दरिद्र हूं और मर जाना चाहता हूं। साधु ने कहा- ऐसा न कहो कि तुम विपन्न हो। मुझे तो तुम्हारे पास बड़ी सम्पत्ति दिखाई पड़ती है। युवक बोला- नहीं मेरे पास कुछ भी नहीं है, मुझे मर जाने दें। साधु ने कहा- ऐसा करो एक दिन रूक जाओ, अगर मेरी बात न जंचे तो फिर कल मर जाना। चलो, मैं आज तुम्हारा सौदा करवा देता हूं। कुछ चीजें तुम्हारे पास हैं जो बेची जा सकती हैं। इस देश का सम्राट मेरा मित्र है। हम उसके पास चलते हैं। मैं उससे कहूंगा कि वह तुम्हारी कीमती चीजें खरीद ले। तुम धनवान हो जाओगे, तुम्हारी शिकायत भी दूर हो जाएगी। तुम्हें मरना है तो कल मर जाना, जल्दी क्या है? आज ही मरने की क्या पड़ी है।

उस युवक को भरोसा न आया। वह तो जीवन से बुरी तरह निराश था। लेकिन साधु पकड़कर उसे सम्राट के पास ले गया। उसने सम्राट के कान में कुछ कहा। सम्राट ने कहा

ठीक! पूछो इस युवक से कि अपनी आंखों की क्या कीमत लेगा, इसकी आंखें निकलवा लेते हैं। एक लाख रूपये में देने को तैयार है? उस युवक ने कहा- आंखें? नहीं-नहीं, मैं अपनी आंखें नहीं निकलवाउंगा। सम्राट ने कहा, चलो डेढ़ लाख ले लेना......दो लाख ले लेना। कितनी कीमत तुम आंकते हो? तुम्हारी आंखें अच्छी लगीं मुझे, मैं आंखें निकलवा लेता हूं। तुम तो वैसे ही मरने वाले हो, क्या फर्क पड़ता है आंखों सहित या आंखों रहित मरे। मैं तुम्हारी आंखें खरीदने के लिए राजी हूं। सम्राट बोला, मैं तुम्हारे दोनों हाथ भी खरीदने को तैयार हूं। दोनों हाथ कटवा दो और ये लो पांच लाख रूपये। युवक ने कहा- क्षमा करें, न मैं अपने हाथ कटवाउंगा न आंखें निकलवाउंगा। साधु बोला- हद हो गई! तुम तो कह रहे थे कि तुम्हारे पास कुछ नहीं है। अब तुम्हें इतने पैसे मिल रहे हैं, ले लो। तुम तो सर्वस्व नदी में डुबा रहे थे मुफ्त में। उस युवक ने कहा- आपने मेरी आंखें खोल दीं, धन्यवाद। अब समझ में आया कि मेरे पास बहुत कुछ है। दो प्यारी आंखें मिली हैं जिनसे मैं दुनिया देख सकता हूं। ये दो हाथ मिले हैं जिनसे मैं कर्म कर सकता हूं। अब मुझे अपनी कीमत का एहसास हुआ!

जो मिला है उसे देखो तो तुम धन्यवाद से भरोगे, शिकायत से नहीं। तब निश्चित ही भविष्य की आकांक्षा, वासना छूट जाएगी। भविष्य अर्थात् जो नहीं है। वर्तमान यानी जो है। वर्तमान का सुख लेने वाला व्यक्ति संतोष से भर जाता है। कामना से मुक्त हो जाता है।

जीवन है सदा वर्तमान में। परमात्मा जीवन का ही दूसरा नाम है। भविष्य अथवा अतीत का कोई अस्तित्व नहीं है। परमात्मा यानी वह, जो है। जिसकी सत्ता है। केवल इस क्षण की सत्ता है। भविष्य केवल सपना है, अतीत केवल याददाश्त है। जो दोनों से मुक्त हो गया, उसने परमानंद को पा लिया।

आपने पूछा है कि परेशान रहता हूं, क्या करूं? समझो। कुछ करने का सवाल नहीं, समझने का, तथ्य के प्रति जागने का सवाल है। कर-कर के, दौड़-दौड़ के ही तो आपने मुसीबत खड़ी की है; इसे पहचानो। अब और 'क्या करूं?' पूछना बंद करो।

हरिओम् तत्सत्।

अध्याय-2

व्याधि में समाधि संभव?
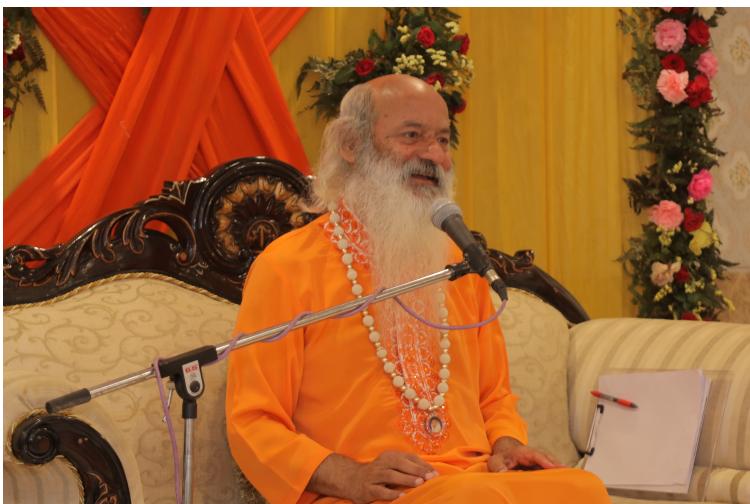
1. क्या रोगी भी ध्यान में भाग ले सकते हैं ?
2. परमात्मा का हुक्म कैसे पता चले ?
3. प्रतिप्रसव का अध्यात्म में महत्त्व ?
4. ध्यान के लिए कौन सा वक्त उपयुक्त ?
5. बच्चा भी समाधि में डूब सकता है ?

प्रश्नः क्या हाई ब्लड प्रेशर के मरीज अथवा अन्य रोगी भी ध्यान में डूब सकते हैं? जिनकी बाइ–पास सर्जरी हुई है क्या वे भी शिविर में भाग ले सकते हैं?

हां, ध्यान में डूब तो सकते हैं किंतु सामान्य स्वस्थ व्यक्ति की तुलना में ज्यादा कठिनाई से। ब्लड प्रेशर यदि बढ़ा हुआ है, या शरीर में कोई भी कष्ट है तो चेतना में डूबना कठिन हो जाता है। क्योंकि जहाँ दर्द, तकलीफ या कोई भी बेचैनी है, चेतना उसी तरफ दौड़ती है। वहाँ एक आपातकालीन स्थिति है जिस पर तुरंत ध्यान देना जरूरी है। प्रकृति ने ऐसा इंतजाम किया है कि कहीं कोई कष्ट होगा, तो सारी ऊर्जा उसी दिशा में प्रवाहित होनी शुरू हो जायेगी। इसलिए योगियों ने अपने शरीर को स्वस्थ रखने पर बहुत जोर दिया है। यदि कोई बीमारी है तो बेहतर है कि हम किसी इलाज के द्वारा उस बीमारी को ठीक करने की कोशिश करें। शरीर में जब कोई कष्ट न हो, मन में कोई कष्ट न हो, तभी हम ध्यान और समाधि में डूब पाते हैं।

संत बार-बार समझाते हैं क्रोध के खिलाफ, लोभ के खिलाफ, ईर्ष्या के खिलाफ, दुश्मनी भाव के खिलाफ, क्योंकि ये सब भी मन के रोग ही हैं। जैसे शारीरिक रोग ऊर्जा को शरीर में खींच लेते हैं, मानसिक बीमारियों में ऊर्जा मन में ही लगी रहती है। यदि किसी पर आपको क्रोध आ गया है, फिर बस वही-वही दिमाग में घूमता रहेगा। ऊर्जा अंतर्मुखी न हो पाएगी। इसलिए शरीर और मन जितने कष्टों से छुटकारा पा जायें उतना ही अच्छा। मैं यह तो नहीं कह रहा हूं कि कोई व्यक्ति सौ प्रतिशत स्वस्थ हो सकता है, जितना संभव हो सके उतना हम स्वस्थ व सामान्य हों, शरीर से और विशेषकर मन से भी, तब चेतना आसानी से अंतर्मुखी हो पाती है, ध्यान एवं समाधि में डूब सकती है। दूसरा आपने पूछा कि जिनकी बाइ-पास सर्जरी हुई है क्या वे भी शिविर में भाग ले सकते हैं? हाँ, जरूर ले सकते हैं, उन्हें तो और भी जल्दी लेना चाहिये; उनके जाने का समय निकट आ चुका है। संसार से विदा होने के पहले जरा भीतर के शाश्वत तत्व को पहचान लें ताकि अच्छे से खुशी-खुशी विदा हो सकें। बाइ-पास ऑपरेशन करना पड़ा इसका मतलब है कि प्रकृति की तरफ से तो मृत्यु का इंतजाम हो चुका था, वह तो चिकित्सा विज्ञान ने बचा लिया। अब तो 'बोनस में मिली लाइफ' जी रहे हैं। अपनी जो उम्र लेकर आये थे वह तो खत्म हो चुकी। चिकित्सा विज्ञान ने उनको थोड़ा सा एक्सटेंशन दिया है। अतः उन्हें तो और शीघ्रता होनी चाहिये।

माना कि शरीर में कोई कष्ट है, माना कि मन में कोई तकलीफ है, लेकिन इससे एक विधायक शिक्षा यह ग्रहण करें कि समाधि में डूबने की त्वरा बढ़े। यद्यपि कष्ट है तो समाधि में डूबना कठिन है लेकिन अगर कोई कष्ट ही न हो जिंदगी में, तो शायद मनुष्य को धर्म का ख्याल ही न आता। यदि जगत में मृत्यु न होती तो जीवन में धर्म भी न होता।

मृत्यु की वजह से ही धर्म का अन्वेषण होता है, खोज शुरू होती है। क्या कुछ अमृत है? क्या कुछ शरीर और मन के पार है? फिर उसकी खोज की जाये!

तो धन्यवाद देना बीमारियों को। माना कि वे बाधाएं हैं लेकिन वे ही सहयोगी भी हैं, और वे ही तुम्हें अध्यात्म में डूबने की प्रेरणा भी पैदा करती हैं। जिंदगी में हर चीज के दो पक्ष हैं- विधायक और नकारात्मक। कोई सोच कर बैठ गया है कि मेरा तो ब्लड प्रेशर ज्यादा है और हृदय की सर्जरी हो चुकी है, अब कैसे ध्यान करूं? तो वह इसको बाधा बना रहा है। और चाहे तो वह सोचे... देखो मुझे ब्लड प्रेशर की बीमारी हो गयी, किसी भी दिन मस्तिष्क की नसें फट सकती हैं, किसी भी क्षण मैं समाप्त हो सकता हूँ। हृदय की सर्जरी हो ही चुकी, अब क्या भरोसा कितनी जिंदगी और बाकी है, कौन जाने? अब जल्दी से ध्यान में डूबूं, जल्दी से समाधि में डूबूं। एक ही घटना से हम दो अलग-अलग निष्पत्तियाँ निकाल सकते हैं। अक्सर हम साधना से बचने के बहाने खोजते हैं।

मैं आपसे कहना चाहूंगा, बहाने मत खोजो हर चीज का विधायक उपयोग कर लो। बीमारी नहीं है तो तुम सौभाग्यशाली हो; अपने स्वस्थ शरीर का उपयोग कर लो समाधि में डूबने के लिए। और अगर बीमारी है तो उस बीमारी का उपयोग कर लो समाधि में डूबने के लिये, बीमारी यानी मृत्यु की पूर्व-सूचना आ गई परमात्मा की तरफ से, विदाई का 'इंटीमेशन लेटर' आ गया। अब न जागोगे तो कब जागोगे?

मैंने सुना है कि एक आदमी शिव का भक्त था। उसने खूब तपस्या की। शिव प्रसन्न हुए, बोले कि वरदान मांग लो। उसने कहा कि केवल इतना ही वरदान दे दो कि मृत्यु को अचानक मत भेजना, पहले मुझे कुछ इशारे करना, कुछ सूचना भेजना ताकि थोड़ी तैयारी कर लूं। शिव ने कहा 'तथास्तु! ऐसा ही होगा।'

फिर वह आदमी लंबा जीया। जब 90 साल की उम्र में मृत्यु आयी, तब वह बहुत घबराया। उसने कहा कि हद हो गयी, अचानक मृत्यु आयी। उसने शिव को पुकारा और शिकायत की- आपने तो वरदान दिया था कि मृत्यु की सूचना पहले भेजेंगे, किंतु कोई सूचना मुझे मिली नहीं। यमदूतों सहित सामने यमराज खड़े हैं अपना भैंसा लेकर तैयार.. .यह नहीं हो सकता। भगवान शंकर प्रकट होकर बोले- पागल, कितनी सूचनाएं तुझे बारंबार भेजीं, याद कर जरा... आज से 50 साल पहले जब तेरा एक बाल सफेद हुआ था वह पहला पैगाम था कि भाई समझ, अब बाल पकने लगे। लेकिन तू भी अजीब आदमी निकला, फटाफट बाजार से डाई खरीद लाया और बाल रंगने लगा। तू मुझे बराबर धोखा देता गया।

फिर मैंने दूसरा पत्र भेजा, स्मरण कर- तेरा एक दांत टूट गया था। मैं बुढ़ापा नजदीक आने की खबर भेजता रहा तेरे दांत तोड़-तोड़कर, मगर तू डेंटिस्ट के पास

जाकर नकली दांत बनवा लाता और मेरे पत्र को पढ़ता ही नहीं! फिर मैंने तेरी आंखें खराब कर दीं, तूने चश्मा बनवा लिया। तू बहुत ही विचित्र प्राणी है-एक के बाद एक मैं कितनी सूचनाएं लगातार तेरे पास भेजता रहा हूं। तू मेरे खत खोलकर पढ़ता ही नहीं।

प्रकृति से निंरतर सूचनाएं मिल रही हैं तो इन बीमारियों को यमराज के विभाग की तरफ से आया संदेश समझना कि अब विदाई की बेला आ रही है, थोड़े दिन के मेहमान और हो। क्या इरादे हैं? उन्हीं क्षुद्र बातों में उलझे रहोगे, संसार की चिंताएं ही करते रहोगे कि चिता पर चढ़ने की याद भी करोगे? मन रूपी व्याधि से मुक्त होकर समाधि नहीं पानी है? शरीर, जो कि बीमारियों का गढ़ है, उसके पार जो चैतन्य है, क्या उसे नहीं जानना? वही असली पूंजी है। जिसने वह पूंजी कमा ली, उसने मृत्यु पर विजय पा ली।

समझदार व्यक्ति हर स्थिति का उपयोग कर लेता है- स्वास्थ्य का भी, बीमारी का भी। नासमझ प्रत्येक स्थति में चूकता ही चला जाता है। कई लोग मुझसे कहते हैं कि अभी तो हम स्वस्थ हैं, जवान हैं, अभी से धर्म की क्या सोचना? अभी तो भोग लें संसार को। बाद में देखेंगे साधना इत्यादि की बातें!

थोड़े समझदार बनो।

प्रश्नः गुरु नानक और अन्य संत भी कहते हैं कि परमात्मा का जो हुक्म है उसे मानकर चलो, उसकी आज्ञा से चलो। इसका क्या अर्थ है? हम कैसे जानें कि परमात्मा का हुक्म क्या है?

परमात्मा तुमसे बाहर नहीं, तुम्हारे भीतर से ही हुक्म देता है। अपनी अन्तरात्मा में डूबो और सुनो वहाँ की वाणी। आज सुबह हम यह प्यारा शबद सुन रहे थे-

अमृतवाणी हरि हरि तेरी।
सुण सुण होय परमगति मेरी।।

भीतर की उस वाणी से जुड़ो। गहराई से जुड़ने पर धीरे-धीरे तुम्हें उसके हुक्म का आभास होने लगेगा। परमात्मा निरंतर इशारा कर रहा है, भीतर से संकेत आते हैं- क्या करना है, क्या नहीं करना है? लेकिन हम बाहर इतने उलझे हुए हैं कि भीतर के उस संदेश का हमें पता ही नहीं चलता। काश हम थोड़े से अंतर्मुखी हो जाएं! परमात्मा की जो धीमी-सी सूक्ष्म आवाज आ रही है, हम उसे सुन पायें!! ओशो एक प्रवचन में कहते हैं कि रात के सन्नाटे से भी धीमी, झींगुर की आवाज से भी सूक्ष्म उस आवाज को सुनो, जो तुम्हारे प्राणों में सदा गूंज रही है। उसमें डूबो, वही परमात्मा की ध्वनि है- झींगुर से भी सूक्ष्म, सन्नाटे से भी बारीक, पक्षियों की आवाज से भी ज्यादा महीन - बहुत मौन होकर, गौर से सुनोगे तो ही सुनाई पड़ती है।

तुम पूछते हो कि परमात्मा का हुक्म कैसे जानें? वह हुक्म हम सब के भीतर मौजूद

है, लेकिन हमने उस पर ध्यान देना बंद कर दिया है। जैसे-जैसे आपको सुरति समाधि में गहराई मिलेगी, परमात्मा के नाद में डुबकी लगेगी, वैसे-वैसे आपका जीवन भी उस परम नियम के साथ सामंजस्य में बैठ जायेगा। इस अस्तित्व में जो भी हो रहा है परमात्मा के हुक्म से ही हो रहा है। यदि आपको 'हुक्म' शब्द अच्छा नहीं लगता तो वैज्ञानिक शब्दावली का प्रयोग कर लें कि जीवन में जो भी हो रहा है एक महानियम से हो रहा है। शब्दों के थोड़े भेद हो जाते हैं- वैज्ञानिक जिसे नियम कहते हैं, धार्मिक व्यक्ति उसे एक व्यक्तित्व देकर कहते हैं - उसकी आज्ञा, उसका हुक्म, धम्म, धर्म, ताओ; ये धार्मिक व्यक्तियों के द्वारा दिये गये नाम हैं। मतलब वही है ताओ यानी वह महानियम, धम्म यानी वह मूल-प्रकृति, धर्म अर्थात् स्वभाव... जो भी तुम कहना चाहो। लेकिन हुक्म कहने से ऐसी भ्रांति हो सकती है जैसे कोई सम्राट, कोई राष्ट्रपति, कोई प्रधानमंत्री आदेश दे रहा है। नहीं, ऐसा तानाशाह कहीं नहीं बैठा है। परमात्मा इस संपूर्ण अस्तित्व की जो जीवंतता है, जो परम ध्वनि है उसका नाम है। उसका आदेश किन्हीं शब्दों में तो न आयेगा लेकिन उसका आदेश सब जगह मौजूद है, उसके आदेश के बाहर कुछ है ही नहीं। सब कुछ नियम से ही हो रहा है। इसलिये ऐसा तो सोचो ही मत कि उसके नियम के खिलाफ कुछ हो सकता है। वैसा तो संभव ही नहीं है। जो कुछ भी हो रहा है प्रकृति के अनुसार ही हो रहा है। लेकिन हम अपने भीतर से टूट गये हैं और हम सोचने लगे हैं - याद रखना, केवल सोचने लगे हैं - कि हम कुछ भिन्न और अलग कर रहे हैं, कुछ पृथक हमारी मंजिल है, हमारा उद्देश्य अलग है। हमको यह पाना है, हमको वह पाना है। यद्यपि हमारे सोचने से कुछ होता नहीं, अस्तित्व जो कर रहा है वही होगा।

ऐसा समझें कि छोटा सा लकड़ी का कोई तिनका नदी में बहता हुआ जा रहा है और वह सोचे कि मुझे बांये मुड़ना है, या थक गया हूं नहीं बहूंगा, कि रुक जाऊंगा तट के किनारे... तिनका लाख सोचे, उसके सोचने से कुछ न होगा। नदी जिस तरफ मुड़ेगी तिनके को वहीं जाना होगा। नदी का पानी कहीं तट पर ठहरेगा तो उसको ठहरना होगा। उसकी अपनी अलग से न तो कोई मंजिल हो सकती है, न है, न हो सकेगी कभी। लेकिन नदी के खिलाफ लड़कर वह परेशान हो सकता है, सिर्फ इस ख्याल में कि मैं ऐसा करूंगा, मैं वैसा करूंगा। नदी के खिलाफ कोई योजना बनाने में वह दुखी हो सकता है। अगर उसे समझ में आ जाये कि यह विराट अस्तित्व की नदी जहाँ जा रही है, मैं इसका एक हिस्सा हूं। तब वह शिथिल, विश्राम को उपलब्ध हो, सुखी और आनंदित हो सकेगा। दोनों स्थितियों में जो कुछ भी हो रहा है वह नियम से ही हो रहा है। जब तिनका अलग जाने की सोच रहा था तब भी नियमानुसार और जब विश्राम को उपलब्ध हो गया, तथाता-भाव में पहुंच गया, तब भी नियम के अनुसार।

नियम क्या है? यदि तुम नदी से लड़ोगे तो तुम दुखी होओगे, तनावग्रस्त होओगे।

नियम है कि यदि तुम नदी को स्वीकार लोगे, राजी हो जाओगे, उसके साथ तुम एकात्म महसूस करोगे तो आनंदित हो जाओगे। ये दोनों ही नियम हैं। नियम के बाहर तो कोई हो नहीं सकता। याद रखना, दुखी होने के भी नियम हैं कि हम कैसे दुखी होते हैं? अहंकार का वह नियम पूरा कर दें तो हम दुखी हो जाते हैं। आनंदित होने का नियम है - समर्पण, अस्तित्व से एकात्मभाव - उस नियम को पूरा कर दें तो हम आनंदित हो जाते हैं। और नियम के अंतर्गत ही हमें स्वतंत्रता भी मिली है। वह तिनका जो सोच रहा है कि मैं बांये जांऊगा कि दांये जांऊगा, यह स्वतंत्रता भी प्रकृति ने उसे दी है कि वह ऐसी भ्रांति में चाहे तो पड़ सकता है। अगर स्वतंत्रता न दी होती तो ऐसा सोच भी न पाता। इसका मतलब हुआ कि यह भी नियम के बाहर नहीं है। जैसे पशु-पक्षी दुखी नहीं हैं, मनुष्य दुखी है, यह भी नियम से है। इसमें कुछ नियम के बाहर नहीं है। ऐसा नहीं सोचना कि तुम अंहकारग्रस्त हो गये हो, महादुख में जी रहे हो तो तुम परमात्मा के नियम से छूट गये हो। नहीं, तुम परमात्मा के दुख वाले नियम का पालन कर रहे हो। यह स्वतंत्रता भी परमात्मा ने दी है कि अगर तुम चाहो तो अहंकार से भर जाओ और खूब दुखी होओ, जितना दुखी होना है होओ। जन्मों-जन्मों दुखी होओ, कोई रोकने वाला नहीं है। तुम पूर्ण स्वतंत्र हो यह भी प्रभु का नियम है।

...अर्थात् नियम के बाहर तो कुछ है ही नहीं। जो कुछ भी हो रहा है परमात्मा के नियम के अनुसार हो रहा है। अब सवाल उठता है कि यदि हम समझदार हैं तो हम वह नियम चुन लेते है जिससे आंनद प्राप्त होता है और अगर हम नासमझ हैं तो वह नियम चुन लेते हैं जिससे मुश्किल खड़ी होती है।

समझो, जैसे गुरुत्वाकर्षण का नियम है; तुम संभल कर चलोगे तो भी तुम नियम के अनुसार ही चल रहे हो, वही पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण चलने में तुम्हारी मदद कर रहा है। चलने का नियम भी, गति का नियम भी उसी गुरुत्वाकर्षण से संबंधित है। और एक आदमी शराब पीकर गड्ढे में गिर गया और अपने हाथ-पैर तोड़ लिये। यह भी गुरुत्वाकर्षण के नियम से हुआ। और यह हमारी स्वतंत्रता है कि हम शराब पीकर डगमगाते हुए चलें, हाथ-पैर तोड़ें, या संभल कर ध्यानपूर्वक चलें, अपनी मंजिल तक पहुंचें, मार्ग ही में ना गिर जायें। तो नियम के बाहर कुछ भी नहीं है। गुरुत्वाकर्षण को कुछ सीधा लेना-देना नहीं है कि तुम शराब पीकर चलते हो कि विपस्सना ध्यान करते हुए चक्रमण करते हो। पृथ्वी को कुछ लेना-देना नहीं है। तुम संभलकर चलोगे वह चलाने में मदद करेगी। तुम लड़खड़ाओगे बेहोशी में, तो वह पटककर तुम्हारे फ्रैक्चर्स कर देगी।

...और यह नियम भी परमात्मा ने इसलिये बनाया है कि दुख पा-पाकर तुम जागो, चेतो, चौंको। कब तक हाथ-पैर तोड़ते रहोगे? कब संभलोगे? जो दुख दिया जा रहा है, उसके पीछे भी अस्तित्व की करुणा है कि धीरे-धीरे समझदार बनो। वरना विवेक का जन्म

कैसे होगा? विवेक जन्मेगा पीड़ा पाकर, दुख पाकर। न तो पीड़ा नियम के खिलाफ है, न सुख, न दुख, न विवेक का जागरण, न चैतन्य का विकास, सब कुछ नियम के अंतर्गत है।

तुम पूछते हो परमात्मा का हुक्म कैसे जानें? जो हो रहा है वह सब परमात्मा के हुक्म से ही हो रहा है। स्वतंत्रता भी परमात्मा के हुक्म से मिली हुई है। स्वतंत्रता का उपयोग किस भांति करना उसके लिये हम स्वतंत्र हैं, यह भी नियमानुसार है। समझदार हो तो आनंद की दिशा में मुड़ जाओगे, नासमझ हो तो दुख की दिशा में मुड़ जाओगे। लेकिन वह दुख भी जगाने वाला है। अंततः वह दुख ही तुम्हें आंनद की तरफ मोड़ेगा। आज नहीं कल, कल नहीं परसों, इस जन्म में नहीं तो अगले जन्म में, हजारों जन्मों बाद कभी न कभी तुम जागोगे, चेतोगे, परम आंनद को उपलब्ध होओगे।

इस भांति एक विहंगम दृष्टि से देखो तब तुम पाओगे जीवन के सारे दुख, सब पीड़ाएं और संताप... वे सब भी बुद्धत्व की तरफ ही ले जा रहे हैं। परम नियम काम कर रहा है। नियम के खिलाफ कुछ भी नहीं है।

प्रश्नः प्रतिप्रसव किसे कहते हैं? अध्यात्म में इसका क्या महत्त्व है, कृपया समझाने की अनुकंपा करें।

प्रसव का अर्थ तो सब जानते ही हैं - जन्म की प्रक्रिया। प्रति का अर्थ है - उल्टा। जिसे पंतजलि ने प्रत्याहार कहा है, महावीर ने प्रतिक्रमण कहा है, उसी को आधुनिक मनोवैज्ञानिक प्रतिप्रसव कह रहे हैं- जन्म की विपरीत प्रक्रिया, पीछे की तरफ लौटना। सम्मोहनविदों ने इस पर बहुत प्रयोग किये हैं कि कैसे हम पीछे लौट सकते हैं? धीरे-धीरे सम्मोहित अवस्था में बचपन की यादें बहुत आसानी से आ जाती हैं और क्रमशः उस दिन तक की याद आ सकती है जिस दिन हम जन्मे थे। फिर उसके पीछे लौटना बहुत मुश्किल है। वहाँ से प्रतिप्रसव शुरू होता है जब हम जन्म के भी पीछे लौट पायें, मां के गर्भ में नौ महीने का स्मरण कर पायें। यदि वहाँ तक पहुंच गये तब अगला कदम उठाया जा सकता है। गर्भ में प्रवेश करने से पहले कहाँ थे, सूक्ष्म रूप में थे। उसके पहले कहाँ थे? किसी वृद्ध-रुग्ण शरीर में थे जिसमें ब्लड प्रेशर हो गया था और बाइ-पास सर्जरी करवायी थी। पीछे की कहानी जैसे-जैसे याद आती जाएगी, संसार के प्रति हमारा मोह व आसक्ति विलीन होते चले जायेंगे।

महावीर और बुद्ध ने इस पर खूब प्रयोग किये। वे इसे जातिस्मरण कहते थे। वह प्रतिक्रमण का ही एक रूप है - पीछे की तरफ लौटते जाना। जिस राह से हम आये थे, उस रास्ते पर फिर से चलकर देखें। प्रति-प्रसव एक नया शब्द है, अर्थ इसका वही है - पीछे की तरफ लौटना, प्रतिक्रमण करना।

हमारा सामान्य जीवन संसार का अतिक्रमण है। जैसे आप कहते हैं न कि शहर में

लोगों ने सरकारी जमीन पर अतिक्रमण कर मकान बना लिये। नगर निगम वाले तोड़ देते हैं, अतिक्रमण को हटा देते हैं। ऐसी ही हमारी स्थिति है। हमारी चेतना ने अतिक्रमण किया है। जो हमारा नहीं है उस पर हम हक जमा कर बैठ गए हैं। अतिक्रमण यानी जो हमारे अधिकार-क्षेत्र के बाहर था, हमने उस पर कब्जा जमा लिया है। प्रतिक्रमण, प्रत्याहार या प्रतिप्रसव का अर्थ है वापस अपने पर लौट आना। जो हमारा नहीं है वह हमारा कभी नहीं हो सकता। वैसा संभव ही नहीं है। असंभव की आकांक्षा छोड़ दें और जो संभव है उसकी तरफ देखें... अपने भीतर जो संभव है, उसे तो हम भूल गये। हमें याद ही नहीं कि हमारे भीतर अनाहत नाद गूंज रहा है, कि हमारे भीतर परमात्मा का प्रकाश छाया हुआ है, जो सचमुच में हमारा है, जिसे हम जन्म से लेकर आये और जो मृत्यु के बाद भी हमारे संग-साथ होगा। उस असली संगी-साथी को तो हम भूल बैठे, और दुनिया में न जाने किस-किस के प्रेम में उलझ गये। निश्चित ही वे नाते-रिश्ते सब झूठे हैं। लेकिन उसमें समय तो बर्बाद हो रहा है।

प्रतिप्रसव का अर्थ है लौटना, जापान के झेन फकीर जिसे कहते हैं- 'रिटर्निंग टू दि सोर्स'। अब प्रतिक्रमण करो। अब जागो।

प्रश्नः क्या सुबह ध्यान करना अच्छा रहेगा?

ज्यादा अच्छा होगा रात्रि को, जब घर-बाहर सब तरफ शांति हो जाए, उस वक्त आधा घंटा या घंटा भर बैठकर प्रयोग करना। क्योंकि संध्याकाल में हमारी चेतना स्वतः ही प्रतिक्रमण कर रही होती है। जैसे शाम को पंछी अपने घोंसलों की ओर लौटने लगते हैं, वृक्ष अपनी पत्तियां ढीली छोड़ देते हैं, फूलों की पंखुरियां बंद हो जाती हैं, ठीक वैसे ही रात्रि को हमारी चेतना अपने पर लौट आती है। ओशो ने व्हाइट रोब ब्रदरहुड का समय शाम सात बजे का चुना है। ध्यान हेतु अधिकांश लोगों के लिए यही उपयुक्त समय है, और अगर नहीं तो सुबह का समय अच्छा है। अगर दिन भर के काम-काज के बाद उस वक्त ज्यादा थक जाते हों और बैठे रहना या आधा घंटा प्रयोग करना संभव न हो तो फिर सुबह जब उठें तो बिस्तर पर ही बैठ जाएं, उस वक्त आधा घंटा करें। या जो आपको ठीक लगे। अपनी सुविधा, व्यवस्था, और अनुकूलता देखकर समय चुन लें। कुछ दिन भिन्न-भिन्न समयों पर प्रयोग करके परिणाम देख लें, फिर जो सर्वाधिक सुखद व प्रीतिकर प्रतीत हो, वही समय चुन लें। हर नियम के अपवाद होते हैं। अलग-अलग व्यक्तियों के लिए एक ही बात लागू नहीं होती।

एक और मित्र ने पूछा है - सुबह-शाम समाधि में डूबना और शेष समय प्रभु के सुमिरन में डूबना - बस यही करना है न? क्या वास्तव में साधना इतनी सरल-सी बात है?

बिलकुल ठीक, बस एक साधक को यही करना है। शेष सब परमात्मा को करना है।

ओशो कहते हैं - 'जो चित्त स्वतंत्र हो गया है और जो चित्त सरल हो गया है वह चित्त अगर शून्य भी हो जाए तो सरलता, स्वतंत्रता और शून्यता के मिलने से समाधि उपलब्ध हो जाती है।' सरल हो रहो। शून्य हो रहो। अपनी मौज से जिओ। प्रेम और आनंद से जिओ।

साधना शब्द से एक भ्रांति पैदा होती है, लगता है यह कोई बड़ी कठिन व जटिल बात है। कबीर कहते हैं - साधो, सहज समाधि भली। एक दिन ऐसा भी आता है जब सुमिरन भी करना नहीं पड़ता, अपने-आप होता रहता है। कबीर कहते हैं - सुमिरन मेरा हरि करे, मैं पाया विश्राम। विश्राम में डूबो।

प्रश्नः क्या मेरा पुत्र जो 11 वर्ष का है, वह भी ध्यान समाधि कार्यक्रम में भाग ले सकता है?

अवश्य। अपने बेटे को आप ध्यान समाधि और सुरति समाधि कार्यक्रम करने जरूर भेजें। असल में सवाल पूछना चाहिये बड़े लोगों के बारे में, कठिनाई उन्हें आती है! बच्चों को तो बहुत आसानी से ध्यान घट जाता है। न उनका अहंकार अभी परिपक्व हुआ है, न तथाकथित ज्ञान के कचरे-कूड़े से उनकी खोपड़ी भरी है; और अभी-अभी वे नाद को भूले हैं, थोड़े समय पहले ही। उनको तो स्मरण दिलाना बहुत ही आसान है, कोई दिक्कत नहीं है। बड़े लोगों को स्मरण दिलाना कठिन है। उनका अंहकार खूब सघन हो गया, उस दीवार को पार करके भीतर की आवाज उनके कानों तक नहीं आ पाती; मुश्किल उनकी है। बच्चों का तो स्वागत है। लेकिन याद रहे, वे अपने भाव से आयें, आप जबरदस्ती न लायें। आप उसे समझायें जरूर, प्रेरणा जरूर दें, लेकिन उसको स्वंय निर्णय करने दें। क्योंकि अगर वह स्वयं अपनी इच्छा से आयेगा तभी गति होगी। यदि आपके फुसलाने से आ गया, तो उसकी गति नहीं हो पायेगी; क्योंकि उसकी कोई इच्छा ही नहीं होगी।

धर्म में गति स्वेच्छा से ही होती है किसी के कहने से या जोर-जबरदस्ती से कभी भी नहीं होती या अक्सर उल्टा परिणाम हो जाता है- उस चीज से चिढ़ पैदा हो जाती है। कोई बात हमको बलपूर्वक कही जाये, तो उसके प्रति नफरत पैदा हो जाती है।

आप अपने बेटे को प्रेम से समझाना लेकिन हठ मत करना। उसकी मर्जी देखना कि उसके भीतर से क्या आता है? यदि उसका मन है आने का तो आने देना, और नहीं मन है आने का तो इंतजार करना...अभी थोड़े और दुख भोगने दो फिर आनंद की तलाश जन्मेगी।

अध्याय-3

ध्यान के आगे जहां और भी हैं!

1. क्या कमी है मेरी साधना में?
2. मंजिल का पता क्यूं नहीं मिल रहा?
3. ओशो कीर्तन संध्या का अनूठा भाव-प्रयोग!

प्यारे मित्रों! व्हाइट रोब ब्रदरहुड में आप सबका स्वागत है। आज केवल एक-दो प्रश्नों का ही जवाब दूंगा। फिर हम कीर्तन में डूबेंगे। बहुत कुछ कहकर शब्दों में नहीं समझाया जा सकता, लेकिन मौन में ग्रहण किया जा सकता है।

पहला प्रश्नः संत कबीर साहब कहते हैं कि गगन गरज रहा है, अमृत बरस रहा है, बिजलियां चमक रही हैं। आनंद–उत्सव हो रहा है। लेकिन मुझे ध्यान में रेचन करते–करते सालों बीत गए, कबीर दास की तरह भीग नहीं पा रहा हूं। क्या कमी है मेरी साधना में? बताने की अनुकंपा करें।

इसी से मिलता-जुलता एक और सवाल है स्वामी योग जयेश का-

दूसरा प्रश्नः किसी शायर ने कहा है– सितारों के आगे जहाँ और भी हैं, अभी इश्क के इम्तिहाँ और भी हैं। क्या यही बात आध्यात्मिक यात्रा पर भी लागू होती है? मैं पंद्रह सालों से चल रहा हूं मगर मंजिल का अता–पता नहीं मिल रहा है!

जयेश, ध्यान पर बात समाप्त नहीं हो जाती। हाँ, शुरुआत के लिए ठीक है, लेकिन वहाँ पर यात्रा खत्म नहीं हो जाती। उसके बाद का भी नक्शा मालूम होना चाहिए कि कहाँ जाना है? ओशो ने कई जगह जिक्र किया है कि उस पार जाने के लिए तुम्हें नाव में बैठना होगा और उस किनारे जब नाव लग जाएगी तो उस किनारे उतरना भी होगा। साधक को ध्यान की विधि से यात्रा की शुरुआत करनी होगी। पतवारें चलानी होंगी, बहुत श्रम करना होगा लेकिन जब उस पार पहुंच गए तो नाव से उतरना भी होगा। फिर आगे और दूसरी यात्रा भी है, उस सम्बंध में एक ख्याल बना रहे, अन्यथा नाव में बैठे रह जाने का खतरा है। उस पार पहुंचकर भी उस पार न उतर पाएंगे।

बस एक बात स्मरण रखें, गगन गरज ही रहा है, बादल अमृत बरसा ही रहे हैं, बिजलियां चमक रही हैं। कहीं कोई कमी नहीं है, उत्सव में। जीवन एक महोत्सव जैसा हो सकता है, अपने क्लाइमैक्स पर है। इस क्षण में जितना उत्सव हो रहा है, इससे एक रत्ती भर ज्यादा न कभी हुआ है और न एक रत्ती भर ज्यादा कभी होगा। परम घटना प्रत्येक क्षण घट ही रही है। लेकिन हम कबीरदास की तरह भीग नहीं रहे हैं, हमने अपना छाता लगा रखा है। ये जो ध्यान की सारी विधियां हैं, वे छाता छुड़ाने के उपाय हैं। किसी तरह से आपका छाता छीन लिया जाए। तब आप भी कबीरदास की तरह कह सकेंगे - भीजे दास कबीर। तो आज महोत्सव का दिन है। छाता को बिल्कुल हटा देना है। क्या है यह छाता? यह कोई ठोस छाता नहीं है, बड़ा पारदर्शी और सूक्ष्म छाता है। विचारों का छाता है, कुछ और नहीं। विचार एकदम सूक्ष्म, हवाई पदार्थ भी नहीं है। लेकिन उस पारदर्शी छाते ने हमें ढांक लिया है। सिर्फ उसको उघाड़ने की बात है। उसको उघाड़ दें फिर आप

भी कह सकेंगे 'झरत दसहुं दिस मोती'। गुलाल और कबीर जैसा उस सौभाग्य का हकदार हम में से प्रत्येक व्यक्ति है। लेकिन उस सौभाग्य को क्लेम वही कर पाते हैं जो उस छाते को उतार कर रखने की हिम्मत रखते हैं। जो छाता लगाए बैठे हैं अपने अहंकार को बचाने के लिए कि कहीं भीग न जाएं, अपने विचारों, विश्वासों और अंधविश्वासों की परत में ढके हुए हैं, वे उस आनंद-वर्षा से चूक जाते हैं।

एक बड़ी सुन्दर घटना मुझको याद आती है वह आपसे कहूँ और आज की बात पूरी करूं। कुछ साल पहले थाईलैंड में गौतम बुद्ध की एक बहुत विशालकाय प्रतिमा थी। उसे मंदिर से, जहाँ वह स्थापित थी, वहाँ से हटाना जरूरी हो गया। क्योंकि सड़क चौड़ी की जा रही थी, सड़क बननी थी तो आवश्यक हो गया कि उस प्रतिमा को वहाँ से हटाकर दूसरी जगह स्थापित किया जाए, दूसरा मंदिर बनाया जाए। बड़े भारी क्रेन से उस प्रतिमा को हटाया गया। दूसरी जगह रखा गया। उठाने-रखने में, उसके बीच में एक दरार पड़ गई। रात को वर्षा हुई और वर्षा का पानी उस दरार में से भीतर चला गया। कुछ मिट्टी वहाँ से बह गई। सुबह पुजारी वहाँ आया तो वह देखकर बड़ा हैरान हुआ। उस दरार में से कोई चमकती हुई चीज नजर आ रही थी। उसने थोड़ी सी मिट्टी कुरेद कर देखी। उसके तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा- सॉलिड गोल्ड, ठोस सोने की प्रतिमा! कोई एक-डेढ़ इंच मिट्टी की परत उस पर चढ़ी हुई थी। भीतर सॉलिड गोल्ड की प्रतिमा। वह विश्व की सबसे बड़ी एवं सबसे वजनदार गौतम बुद्ध की सोने की मूर्ति है। आज थाइलैंड की राजधानी बैंकॉक के एक मंदिर में स्थापित है। लेकिन हजारों साल से लोग उसे मिट्टी की मूरत समझते रहे। ऐसा अनुमान है कि कभी किसी आक्रमणकारी ने थाइलैंड पर हमला किया होगा तो पुजारियों ने सोने की इस प्रतिमा को बचाने के लिए उस पर मिट्टी की परत चढ़ा दी, ताकि हमलावर उसे मिट्टी की मूर्ति समझें । उसको लूट कर न ले जाएं। फिर समय बीता, वक्त आया और गया। इतिहासविदों का अनुमान है कि वे पुजारी मारे गए। बाद में उनकी दूसरी पीढ़ी आ गई, तीसरी पीढ़ी आ गई। धीरे-धीरे यह बात विस्मृत हो गई कि वह सोने की प्रतिमा है। लोग उसको मिट्टी की मूर्ति ही समझते रहे। हजारों साल से उसे मिट्टी की मूर्ति समझा जा रहा था। लेकिन संयोग से पता चला कि वह मिट्टी की मूर्ति नहीं है।

कुछ ऐसा ही हम सबके साथ भी घटित हो गया है। बुद्धत्व हम सबका जन्मसिद्ध अधिकार है। उसको लेकर ही हम पैदा हुए हैं। वह हमारे भीतर छुपा हुआ है। लेकिन ऊपर एक पतली सी, झीनी परत चढ़ गई है और वह कोई ठोस मिट्टी की परत भी नहीं है। सिर्फ विचारों, विश्वासों, धारणाओं की परत है। ठोस पदार्थ की भी नहीं है। जरा सा हम उसे कुरेद दें तो भीतर वह बुद्ध की प्रतिमा प्रकट हो जाएगी। वह गरिमा, वह महिमा प्रकट हो जाएगी। कबीरदास जैसे फिर हम भी कह सकेंगे- भीजे दास कबीर! लेकिन इस परत को हटाना

जरूरी है। ध्यान की इस प्रक्रिया द्वारा हम इस परत को हटा रहे हैं।

मैं जगह-जगह शिविर लेने जाता हूँ और ऐसा मैं देखता हूं कि अनेक मित्र हैं जो बीस साल से ध्यान कर रहे हैं, कुछ पच्चीस साल से साधना के नाम पर कैथार्सिस कर रहे हैं। आगे की यात्रा में कहीं अटकाव आ गया है। सक्रिय ध्यान पच्चीस साल करने की चीज तो नहीं है। वह तो ऐसा हुआ कि कैथार्सिस करके मिट्टी की परत थोड़ी कुरेदी और फिर दिन भर में धूल की नई परत चढ़ा ली। ऐसा ही कुछ हो रहा है। एक हाथ से हम मंदिर की ईंट रख रहे हैं दीवार बनाने के लिए और दूसरे हाथ से ईंट को हटा रहे हैं। इस प्रकार तो कभी भी यह मंदिर निर्मित न होगा।

बहुत से मित्र लम्बे समय से ध्यान कर रहे हैं, बड़ी निष्ठा से श्रम कर रहे हैं। लेकिन कुछ कमी है। कोई चूक, कोई बुनियादी भूल हो रही है। वह भूल जैसी मुझे दिखाई पड़ती है, वह यह है कि साफ सफाई तो करते हैं कैथार्सिस द्वारा, रेचन द्वारा, प्राणायाम द्वारा ऊर्जा जगाई, थोड़ी देर के लिए एक निर्मलता आई। लेकिन दिन भर में फिर कूड़ा-करकट इकट्ठा कर लिया। दूसरे दिन सुबह फिर वहीं के वहीं। फिर क्रोध इकट्ठा हो गया, फिर वासना एकत्रित हो गई। फिर लोभ जमा हो गया। फिर घृणा इकट्ठी कर ली। यह तो बड़ी बुनियादी भूल हो गई ! ऐसे तो हम जिंदगी भर भी श्रम करते रहेंगे तो भी परम अनुभव न होगा। यह तो ऐसा हुआ कि हमने गौतम बुद्ध की उस प्रतिमा में से एक पर्त हटाई और फिर थोड़ी सी मिट्टी थोप दी उस पर। अगले दिन पुनः वही काम किया। फिर थोड़ी सी मिट्टी खरोंची और नई मिट्टी थोप दी। इस प्रकार तो हम उस प्रतिमा को कभी भी न उघाड़ पायेंगे। एक हाथ से हम बना रहे हैं और दूसरे हाथ से मिटा रहे हैं। इससे तो श्रम व्यर्थ होगा, समय बर्बाद होगा। हमें कहाँ जाना है, क्या हमारा गंतव्य है, हमारा लक्ष्य क्या है, यह स्पष्ट होना चाहिए। और क्यों हम उससे चूक रहे हैं? इतनी निष्ठापूर्वक ध्यान कर रहे हैं, श्रम कर रहे हैं। फिर कहाँ गलती हो गई? इस सम्बंध में थोड़ी सी चर्चा की है, आप भी चिंतन करें। उत्तर देने के बजाए मैं प्रश्न खड़े करना पसंद करता हूं ताकि आपको झकझोर सकूं, मनन के लिए मजबूर कर सकूं। क्योंकि अंततः केवल स्वयं के उत्तर ही काम आते हैं, उधार ज्ञान किसी काम नहीं आता। धन्यवाद।

अब हम कीर्तन में डूबेंगे। जो शब्दों में नहीं समाता, उसे संगीत में, और स्वरों के मध्य से मौन में ग्रहण करें।

ओशो कीर्तन संध्या

तो प्यारे मित्रों, व्हाइट रोब ब्रदरहुड में आप सबका स्वागत है। सभी सद्गुरु देह से विदा लेने के पूर्व कोई ऐसी विधि देकर जाते हैं जिसके द्वारा उनके शिष्य बाद में भी उनसे जुड़ सकें। हमारे परमगुरु ओशो ने व्हाइट रोब ब्रदरहुड नामक विधि हमें दी है। दैहिक

जीवन के आखिरी तीन महीने में उन्होंने यह विधि विकसित की। हम इसी को हिन्दी में ओशो कीर्तन संध्या पुकारते हैं। आओ, इसमें डूबने के पूर्व एक गीत सुनते हैं, अपने दोनों हाथ सीने पर रखकर हृदयपूर्वक पुकार एवं प्रार्थना से भरते हैं।

प्यारे ओशो पधारो....!

तेरे करुणा मेघ धरा पे बरसें बारम्बार, उजड़े हुए दियार में छाई रहे बहार।

होता रहे जीवन का फिर फिर नया श्रृंगार, चलता रहे गुलशन का यूं ही कारोबार।

म्हारे प्यारे ओशो पधारो म्हारे देश।

कितने प्यार से नेहा लगाया, मेरा तन मन चेतन मोह लिया

मधुर मिलन की झलक दिखाई, फिर अपना मुंह मोड़ लिया।

क्या तुमने प्रीत का वादा करके प्रीत निभाना छोड़ दिया?

किस लोक बसे हो जाके पिया इस लोक में आना छोड़ दिया?

म्हारे प्यारे ओशो पधारो म्हारे देश।

रस्ते भर रो-रो के हमसे पूछा पांव के छालों ने-

बस्ती कितनी दूर बसा ली दिल में बसने वालों ने?

जिंदा हैं इसलिए कि हमें तुमसे प्यार है, हमको मिटा दो तुम, ये तुम्हें इख्तियार है

गुजरोगे तुम कभी न कभी इस मुकाम से, बैठे हैं रहगुजर पे हमें इंतजार है।

म्हारे प्यारे ओशो पधारो म्हारे देश।

किस तरह दर्दे मुहब्बत में जिया जाता है? कैसे रिसते हुए जख्मों को सिया जाता है?

तुम कभी सामने आओ तो पूछूं तुमसे- किस तरह हंसते हुए जहर पिया जाता है?

जिंदगी करती है कांटों पे बसेरा कैसे? दूर होता है ग़मे दिल का अंधेरा कैसे?

तुम कभी सामने आओ तो पूछूं तुमसे- विरह की रात का होता है सवेरा कैसे?

म्हारे प्यारे ओशो पधारो म्हारे देश।

मैं कैसे मान लूं अश्कों में कोई असर ही नहीं,

कि दिल तड़फता रहे और तुम्हें खबर भी नहीं!

शायद मेरा दिल ही बेकरार कम होगा, शायद इन आंखों में इंतजार कम होगा।

तुम्हारी वफा में तो कमी हो नहीं सकती, हो न हो मुझको ही एतबार कम होगा!

म्हारे प्यारे ओशो पधारो म्हारे देश।

रोकर सुकून पाया जब रूह को आराम मिला,

अश्क थमे मन चुप हुआ तो ओशो का पैगाम मिला-

'ज्यूं बेटे की अंगुली पकड़कर मां चलना सिखलाती,

फिर बेटा चलने लगता तो अपना हाथ छुड़ाती।

ध्यान लगाना सीख लिया अब अपने भीतर डूबो,

सब आकारों के अंदर अब निराकार को ढूंढ़ो।
ओंकार में मेरी ही अमृत वाणी सुन लो तुम,
प्रेम और आनंद से जीवन का रस पी लो तुम।
खुद में भगवत्ता पहचानो, गुनो मेरा संदेश-
नाचो गाओ, भीतर झांको, तन है केवल भेष।
दृश्य नहीं द्रष्टा बन बैठा, मैं बसा तुम्हारे देश।
भेष-भेष के अंदर हूं मैं, भीतर करो प्रवेश।।'

सभी मित्र बहुत भाव से भर गए हैं! अब हम नृत्य में डूबेंगे। इस संबंध में थोड़ा-सा समझ लें। ओशो ने जितनी भी ध्यान की विधियाँ बनाई हैं, अधिकांश में नृत्य को जरूर रखा है। नृत्य की एक महत्त्वपूर्ण भूमिका है, इसको थोड़ा समझ लें। जीवन में हम बहुत सी क्रियाएं करते हैं लेकिन नृत्य उन सब में इन अर्थों में बहुत अद्‌भुत है कि नृत्य और नृत्यकार दोनों अलग-अलग नहीं होते। एक पेंटर, पेंटिग से अलग होता है, एक घड़ा बनाने वाला कुम्हार, घड़े से अलग होता है। आप कुछ बनाते हैं, तो आप उस बनाई हुई चीज से अलग हो जाते हैं। नृत्य एक ऐसी घटना है, जिसमें नर्तक और नृत्य दोनों पृथक नहीं, वरन् एकात्म होते हैं। आप जब नहीं नाच रहे, और कोई पूछे कि आपका नृत्य कहाँ रखा है?...तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी... नृत्य कहीं भी नहीं है। हाँ, कवि से उसकी कविता के विषय में ऐसा सवाल पूछा जा सकता है, वह आलमारी में से डायरी निकालकर बता देगा कि ये रही मेरी रचनाएं। अन्य सभी प्रकार के सृजनशील लोग जब जीवित नहीं बचेंगे तब भी उनके सृजन शेष रह जाएंगे। मूर्तिकार मर जाएगा, चित्रकार की मौत हो जाएगी, किंतु उनकी मूर्तियां अथवा पेंटिंग्स सुरक्षित रह सकती हैं, क्योंकि वे उनसे पृथक हैं। लेकिन जब आप नाचते हैं, केवल तब ही आप नर्तक होते हैं, तथा सिर्फ तभी नृत्य होता है, वह आपसे भिन्न नहीं हो सकता।

हिन्दू धर्म को छोड़कर दुनिया के अन्य सब धर्मों ने परमात्मा की जो कल्पना की है, वह सृष्टा की भांति है कि ईश्वर ने इस दुनिया को रचा। ईसाई कहते हैं कि उस ने छः दिन में जगत का निर्माण किया, सातवें दिन रविवार को छुट्टी मनाई। इस तरह तो ईश्वर अलग है और दुनिया अलग हो गई। सिर्फ हिन्दू धर्म ने परमात्मा को नटराज के रूप में देखा, नर्तक के रूप में, जो निरंतर नाच रहा है। इसका क्या अर्थ हुआ? इसका यह अर्थ हुआ कि सृष्टि में सृष्टा समाहित है, सृष्टि और सृष्टा अलग नहीं हैं। सृष्टा अलग से कहीं और बैठा हुआ नहीं है, कण-कण में वह विराजमान है। हम सबके भीतर भी वही परमात्मा तरंगित हो रहा है। वही सागर प्रत्येक लहर में मौजूद है। लहर का अस्तित्व अलग नहीं है सागर से। और सागर का अस्तित्व अलग नहीं है लहर से। नृत्य के दौरान इस एकात्मीयता के तादात्म्य में, एक होने के भाव में बड़ी सरलता से प्रवेश हो जाता है।

भावमग्न होकर जब आप नाचते हैं, तो नृत्य ही बचता है, नर्तक खो जाता है। कर्ताभाव यानी अहंकार विलीन हो जाता है। इसलिए व्हाइट रोब ब्रदरहुड में इसकी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

जब आप पूरे भाव विभोर होकर नाचते हैं तो एक क्षण आता है, जब केवल ऊर्जा शेष रह जाती है, नृत्य करती हुई ऊर्जा। आप जीवन ऊर्जा के एक पुंज मात्र रह जाते हैं। तन-मन के रूप-आकार खो जाते हैं। नर्तक नहीं बचता सिर्फ नृत्य बचता है। यही वह सौभाग्य की घड़ी है, जब हम सद्गुरु से, परमात्मा से जुड़ जाते हैं। इसलिए नृत्य के बाद दूसरे चरण में जब यह ऊर्जा ही ऊर्जा शेष रहे, तब डूब जाना है इस भाव में कि मैं नहीं हूँ। प्रभु ही हैं, बस ओशो ही हैं। ओशो इसलिए, क्योंकि सीधे परमात्मा को तो हम जानते नहीं। शिष्य के लिए सद्गुरु साकार परमात्मा है। परमात्मा निराकार सद्गुरु है।

हम तो अपने गुरु को जानते हैं, जिससे हमें प्रेम है। जो हमें प्रिय है, जिसके प्रति हमारी श्रद्धा है, वह गुरु ही हमारे लिए परमात्मा का द्वार है। गुरु को हम जानते हैं, गुरु बीच में खड़ा है। एक तरफ शिष्य है, बीच में गुरु है, उस तरफ परमात्मा है। परमात्मा की और शिष्य की सीधी मुलाकात सम्भव नहीं। बीच में गुरु चाहिए, इसलिए तो सिक्ख अपने मंदिर को गुरुद्वारा कहते हैं। गुरु द्वार है, उसी के माध्यम से प्रवेश हो सकेगा परमात्मा में। जीसस कहते हैं- आई एम दि गेट, ओशो ने इस वचन को अपनी किताब का शीर्षक बनाया है।

दूसरे चरण में हम भाव करते हैं कि हम ओशो से जुड़ गए हैं। ओशो हमें प्रिय हैं। हमारी श्रद्धा का भाव है, उनके साथ। हम उनसे जुड़ना चाहते हैं इसलिए वह भाव आसान है। सीधा यह भाव करना कि मैं परमात्मा से जुड़ा हूँ, बहुत मुश्किल, लगभग असंभव है। इसलिए गुरु के माध्यम से आसान है भीतर की यात्रा। गुरु को द्वार बनाकर फिर हम उस विराट शून्य के मंदिर में प्रवेश कर सकते हैं। गुरु के बहाने, उसके माध्यम से परम चैतन्य में हमारा प्रवेश हो जाता है, सारे अस्तित्व से हम संयुक्त हो जाते हैं।

कल एक मित्र मुझसे पूछते थे- यह भाव करना कि 'मैं नहीं हूँ' यह तो हमारी कल्पना है, कल्पना से क्या होगा?

कल्पना से बहुत कुछ हो सकता है क्योंकि यह भाव कि 'मैं हूं', अहंकार का जो होना है, वह भी केवल भाव ही है। वह भी मात्र कल्पना है, उसमें कोई सच्चाई नहीं है। आप खोजें अपने भीतर अहंकार कहाँ है? कहीं भी नहीं मिलेगा। जिसे आपने स्वयं का होना माना है, मान रखा है, वह कहाँ है? जरा खोजें, आँख बंद करके कि मैं कौन हूँ और मैं कहाँ हूँ? आप स्वयं को कहीं नहीं पायेंगे। अहंकार मान्यता है, सम्मोहन है। और इसलिए एक सम्मोहन के कांटे को दूसरे प्रति-सम्मोहन के कांटे से निकाला जा सकता है।

हमारा अहंकार, हमने जो मान रखा है कि मैं हूँ, वह भी सिर्फ कल्पना है। इसलिए

इसमें कोई खास बात नहीं है कि कल्पना को कल्पना से कैसे काटा जा सकता है? लोहे की आरी से लोहा कैसे काटा जाता है! समग्रता से भाव करें कि मैं मिट रहा हूँ, मैं पिघल गया हूँ, मैं डिजॉल्व हो गया हूँ, तो वैसा हो जायेगा। सिर्फ भावना की बात है, और भाव से अहंकार मिट जाता है। उसके मिटते ही परमात्मा से हमारी एकता सध जाती है। अहंकार पृथकता की धारणा है।

तो यह व्हाइट रोब ब्रदरहुड की विधि दो चरणों में होगी। पहले चरण में नृत्यमग्न हो जाएं। नृत्य इतने भाव विभोर होकर करना है, पूरी मस्ती से, पूरे भावाविष्ट होकर कि सिर्फ ऊर्जा ही ऊर्जा शेष रह जाए। सिर्फ नृत्य बचे और नर्तक खो जाए। फिर दूसरे चरण में शांत, स्थिर, मौन बैठकर या लेटकर संगीत को सुनते हुए भाव करना है कि मैं नहीं हूँ। कल्पना कर लें कि आप बैठे हैं ओशो मंदिर में, ओशो के समक्ष। भाव करें कि ओशो मौजूद हैं और धीरे-धीरे मैं विलीन हो रहा हूँ, मेरे भीतर ओशो ही विराजमान हैं। थोड़ी-सी कल्पना करें कि मेरे शरीर में ओशो ही हैं। आप नहीं बचे, ओशो आपके भीतर उपस्थित हैं। क्योंकि जब हम सोचते हैं कि हम उनके सामने हैं, तब भी एक दूरी रहती है। वह दूरी भी क्यों रहे? यही भाव करें कि आप नहीं बचे। आपके भीतर ओशो मौजूद हैं और फिर देखें, कैसे अहंकार गायब होता है और कैसे गुरु की मौजूदगी, उपस्थिति का आभास होता है! वह आभास कोई कल्पना नहीं है, वह एक वास्तविकता है। कल्पना तो हमारा अहंकार है, हमारा होना है। ओशो की उपस्थिति या कहें परमात्मा की उपस्थिति तो एक सच्चाई है, वह तो एक वास्तविकता है। तो व्हाइट रोब ब्रदरहुड के लिए तैयार हो जाएं। उठकर खड़े हो जाएं और नृत्य में भाव विभोर होकर डूबें। गीत के बोल बड़े प्यारे हैं। सब मिलकर गाएं-

ओशो म्हारे देश!
पधारे, पधारे, प्यारे ओशो, पधारे म्हारे देश।
जब भीतर किया प्रवेश, मिले ओशो म्हारे देश।।
रफ़्ता-रफ़्ता समा गए हैं, मेरी हस्ती में ओशो।
दिखते नहीं पर रहते हैं दिल की बस्ती में ओशो।।
जब भीतर किया प्रवेश, मिले ओशो म्हारे देश।।
उनके बाद दिलकश कोई नजारा ही न था,
वे दूर न थे ठीक से हमने पुकारा ही न था।
मौत जिस्मों की हुआ करती है रूहों की नहीं,
इश्क वालों को कभी मौत ने मारा ही न था।
जब भीतर किया प्रवेश, मिले ओशो म्हारे देश।।
आसमां दे रहा है सदाएं मुझे; मुस्कराती सी लगतीं फिजाएं मुझे!

गुदगुदाने लगी हैं हवाएं मुझे; अब तो रहमत सी दिखतीं सजाएं मुझे!
जो कभी दूर लगता था वो पास है; जिंदगी का हरेक पल बड़ा खास है।
न कोई आरजू, न कोई आस है; मेरे दिल ये बता कैसा अहसास है?
जब भीतर किया प्रवेश, मिले ओशो म्हारे देश।।
खुदा हमको ऐसी खुदाई न दे, कि अपने सिवा कुछ दिखाई न दे।
खुदा ऐसे अहसास का नाम है, खुद के भीतर रहे और दिखाई न दे।
जब भीतर किया प्रवेश, मिले ओशो म्हारे देश।।
जिसका कोई भी नहीं उसका खुदा है यारों,
बन गया जीवन मंदिर का दीया है यारों।
मैं अंधेरे में रहूं या कि उजाले में रहूं,
ऐसा लगता है कि वो देख रहे हैं यारों।
जब भीतर किया प्रवेश, मिले ओशो म्हारे देश।।
उनके आने की बस खबर सुनके, उनकी खुशबू से सारा घर महके।
वो याद आएं तो ये दिल बहके, दीद हो जाए तो नजर चहके।
जब भीतर किया प्रवेश, मिले ओशो म्हारे देश।।
खुद-ब-खुद बज उठी प्यार की रागिनी,
और सदा आ रही है छन छनननननन।
जब से ओशो का पारस परस पा लिया,
माटी सोना हो गई है सन सनननननन।
जब भीतर किया प्रवेश, मिले ओशो म्हारे देश।।
क्या बताएं कि क्या हो गया, मुर्शिद का सामना हो गया।
उनके कदमों पे आखिर मेरा, आज सजदा अदा हो गया।
देखकर ओशो की तस्वीर को, खुद खुदा भी फिदा हो गया।
जब भीतर किया प्रवेश, मिले ओशो म्हारे देश।।

अहोभाव से भरे हुए..... सब मित्र बैठ जाएं। ओशो की मौजूदगी में डूबें। मौन.... मौन.... परम मौन। बाहर मौन, भीतर भी मौन। शांति ही शांति। विश्राम। ओशो के चरणों में समर्पण।

(पंद्रह मिनट मौन में डुबकी के बाद सब ओशो प्रेमी चुपचाप विदा होते हैं।)

अध्याय-4

आप कौन हैं, आपका संदेश क्या है?
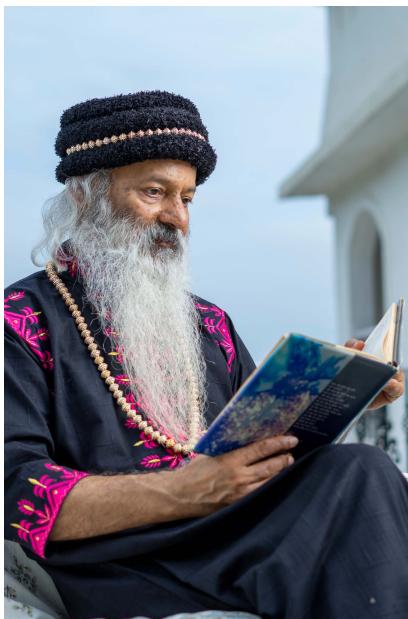
1. आचार्य जी, अपने बारे में कुछ कहें।
2. आचार्य संघ की महत्ता पर प्रकाश डालें।
3. गुरु-समर्पण के बिना संबोधि संभव है?
4. शिविर के प्रभावशाली होने का यकीन कैसे दिलाएं?

पहला प्रश्नः अपने बारे में कुछ कहें। आप कौन हैं और आपका संदेश क्या है?

अपने बारे में कुछ कहने जैसा नहीं, क्योंकि भीतर जाता हूँ तो स्वयं को पाता ही नहीं। अपने होने का कुछ पता ही नहीं है। पूछते हो कौन हूँ? एक साधारण व्यक्ति हूँ और सन्देश बस इतना ही है कि साधारणता में असाधारणता छिपी हुई है। सहज, सामान्य होकर परमात्मा को जाना है; अपने भीतर उस अथाह को पहचाना है। बस इतना ही सन्देश है जो सदा-सदा से सन्तों का रहा है कि हर व्यक्ति स्वयं के भीतर डूब सकता है उस आनन्द के सागर में, उस सच्चिदानन्द को जान सकता है। तो बस वही छोटा-सा सन्देश है और उसे मेरा सन्देश कहना भी गलत होगा। सदा-सदा से जो जागे हैं, जिन्होंने स्वयं को जाना है, उनका एक ही संदेश रहा है। तुम चाहो तो उसे ही मेरा संदेश भी कह लो। लेकिन उसमें मेरा संदेश जैसा कुछ है नहीं। और जब मैं कहता हूँ कि स्वयं को जाना है तो बस यही जाना है कि स्वयं का होना नहीं है। आत्मज्ञान में इतना ही पता चलता है कि मैं नहीं हूँ।

भिक्षु नागसेन की कहानी आपने सुनी होगी। सम्राट ने खबर भेजी अपने वजीरों के हाथ नागसेन को निमन्त्रण भेजा कि आओ राजदरबार में आपका स्वागत करेंगे, दरबार में आपको जगह देंगे, आप बहुत बुद्धिमान, बहुत विवेकपूर्ण व्यक्ति हैं; आप दरबार की शोभा बढ़ायें। जो वजीर ये संदेश लेकर गए थे नागसेन के पास; नागसेन ने उनसे कहा कि सम्राट ने बुलाया तो जरूर आ जाऊँगा, लेकिन उनसे कहना कि नागसेन जैसा कोई व्यक्ति है नहीं। वे वजीर तो बहुत चकित हुए कि जब नागसेन है ही नहीं जो आएगा कौन?

उन्होंने आकर सम्राट से पूरी बात कही। सम्राट ने कहा कि ये तो बहुत ही विचित्र बात कह रहे हैं। जब नागसेन हैं ही नहीं तो फिर आयेंगे कौन? खैर, आने का इन्तजाम किया गया। रथ पर सवार होकर भिक्षु नागसेन पहुँचे। सम्राट ने द्वार पर उनका स्वागत किया और कहा कि भिक्षु नागसेन आपका स्वागत करता हूँ। नागसेन ने नमस्कार का जवाब दिया और कहा कि नागसेन तो है नहीं, आपका स्वागत मगर स्वीकार करता हूँ। तब तो सम्राट ने सोचा कि पूछ ही लेना चाहिए। उसने कहा कि जब नागसेन है ही नहीं तो स्वागत कौन स्वीकार कर रहा है?

नागसेन ने कहा- मामला कठिन है, थोड़ा विस्तार से समझाना पड़ेगा। एक प्रयोग करते हैं। मैं आपसे पूछता हूँ कि जिस रथ पर मैं बठैकर आया, वह रथ कहाँ है? सम्राट ने कहा कि यहीं, आपके सम्मुख ही तो खड़ा है। नागसेन ने सारथियों से कहा कि रथ के

घोड़े अलग करो। घोड़े अलग कर दिये गए। नागसेन ने सम्राट से पूछा कि क्या ये घोड़े रथ हैं? सम्राट ने कहा कि नहीं, घोड़े रथ कैसे हो सकते हैं; घोड़े तो सिर्फ घोड़े हैं। तो नागसेन ने कहा- फिर घोड़ों को यहाँ से दूर ले जाओ। मैं रथ खोजना चाहता हूँ। रथ कहाँ है? उसने रथ के पहिए निकलवा दिये और पूछा कि क्या ये पहिए रथ हैं? सम्राट ने कहा कि नहीं, ये तो केवल पहिए हैं, चाक हैं। तो नागसेन ने कहा- इनको भी यहाँ से हटाओ, ये भी रथ नहीं हैं। और इस प्रकार वह एक-एक करके सारा सामान रथ का निकलवाता गया। वह सीट व गद्दी, जिस पर वह बैठा था; वे रस्सियाँ जिनसे घोड़े बंधे थे, रथ का छप्पर आदि सब हटवा दिए। एक-एक हिस्सा, एक-एक अंग अलग करवाता गया और पूछता गया कि क्या यह रथ है? सम्राट को कहना पड़ा- नहीं, यह तो रथ नहीं है, यह रस्सी है, यह छप्पर है, यह गद्दी है। एक-एक करके सब चीजें अलग हो गईं। तब नागसेन ने मुस्कुराकर सम्राट से पूछा- तो फिर बताओ रथ कहाँ है? क्योंकि जो चीजें मैंने यहाँ से अलग कीं, उनमें से रथ कोई भी न था। सम्राट बड़ी बिगुचन में पड़ गया। उसने कहा कि रथ उन सब चीजों के संयोग का नाम है, रथ अलग से कोई वस्तु नहीं है। उन सबका संयोग, उनके जमाव का नाम रथ है। वे चीजें सब अलग-अलग कर ली गईं, पीछे कोई रथ शेष नहीं रह गया।

नागसेन ने कहा कि अब तुम समझ सकते हो मेरी बात। मैं भी एक जमाव हूँ। तुम जिसे भिक्षु नागसेन के नाम से जानते हो, वह महज एक संयोग है। शरीर का, मन का और चैतन्य का। इनको अलग-अलग कर लो, पीछे नागसेन नाम का कोई व्यक्ति नहीं छूट जायेगा। यह शरीर माता-पिता से मिला, यह उनकी देन है, यह पदार्थ का हिस्सा है। यह पदार्थ से बना, एक दिन फिर मिट्टी में मिल जायेगा। यह मिट्टी से ही निर्मित है, भोजन से निर्मित है, उपनिषद के ऋषि इसे अन्नमय कोष कहते हैं। मन समाज से मिला, शिक्षा से मिला, संस्कार से मिला। सारे विचार दूसरों से मिले, कोई भी विचार मेरा विचार नहीं है। एक दिन यह मन फिर विदा हो जायेगा। और मेरे भीतर जो चैतन्य की धारा है, वह परमात्मा की ही धारा है। वह भी मेरी नहीं। इन तीनों का जो क्रॉसिंग पॉइन्ट है, जहाँ ये तीनों रेखाएँ मिल नही हैं- शरीर, मन, आत्मा की- उसका एक नामकरण हो गया है, लोग उसे भिक्षु नागसेन कहते हैं। ठीक है... उपयोगी है नाम, पहचानने के लिए; व्यवहारिक रूप से उपयोगिता है उसकी, लेकिन उसकी कोई सच्चाई नहीं है। वह केवल एक कामचलाऊ उपयोगिता, यूटीलिटेरियन वैल्यू है उसकी। सच्चाई उसमें कुछ भी नहीं है। शरीर को अलग कर लो, मन को हटा लो, चेतना को वापिस खींच लो, पीछे नागसेन नाम का कोई व्यक्ति नहीं रह जायेगा।

आप पूछते हैं मुझसे कि आप कौन हैं? बस ऐसा ही समझना कि एक संयोग मात्र।

और संदेश यही है कि आप भी ऐसे ही संयोग हैं और जब तक आप व्यवहारिकता में उलझे रहेंगे, अपने आपको केवल नाम-रूप समझते रहेंगे तब तक जीवन में दुःख रहेगा। काश! अपने भीतर डूबें, खोजें कि मैं कौन हूँ? और आप पायेंगे कि भीतर तो कोई भी नहीं है। बस केन्द्र में परमात्मा मौजूद है चैतन्य रूप में, मध्य में मन मौजूद है समाज व शिक्षा के द्वारा प्रदत्त, एवं परिधि पर शरीर मौजूद है भोजन से निर्मित, माता-पिता से मिलर उपहार- इन तीनों का महज संयोग है। बस यही छोटा-सा संदेश है- समाधि में डूबकर इस संयोग को पहचान लो और इससे मुक्त हो जाओ। मुक्त होने के लिए कुछ और करना नहीं पड़ता, ज्ञान ही पर्याप्त है। लेकिन यह शब्द- आत्म ज्ञान, सैल्फ रिअलाइज़ेशन बड़ा कन्ट्राडिक्ट्री है। सैल्फ रिअलाइज़ेशन का मतलब है कि वैन यू रिअलाइज़ दैट देयर इज़ नो सेल्फ, दैट इज़ सैल्फ रिअलाज़ेशन।

आत्मज्ञान का सिर्फ इतना ही अर्थ है कि पता चलता है कि मैं नहीं हूँ। इसीलिए तो बुद्ध ने उसको अनात्मा कहा। कुछ भी कह सकते हैं- आत्मा कहना चाहो आत्मा कह लो, अनात्मा कहना चाहो अनात्मा कह लो- उस परम रहस्य में सारे विरोधाभास समाहित हो जाते हैं। बस छोटा-सा संदेश है- उस परम रहस्य को जान लो।

दूसरा प्रश्नः ओशो आचार्य संघ के निर्माण की प्रेरणा और महत्ता पर प्रकाश डालें।

ओशो आचार्य संघ एक अस्तित्वगत घटना के रूप में स्वयंमेव उभरकर आया। किसी ने इसकी योजना नहीं बनाई, न इसकी कोई मानसिक कल्पना की गई, यह सहज रूप से अपने आप ही विकसित हुआ, जैसे कोई फूल खिलता है। अतीत में कभी-भी बुद्ध पुरुषों ने मिल-जुलकर काम नहीं किया। आज सोचते हैं तो आश्चर्य लगता है! शायद इतने बुद्ध पुरुष कभी थे भी नहीं। यह तो ओशो की बगिया है कि जो बुद्धत्व के इतने फूल खिल रहे हैं और खिलेंगे, कि बुद्ध पुरुष भी मिल-जुलकर काम कर सकते हैं; और तब वह काम बहु-आयामी हो जायेगा, बहुत समृद्ध हो जायेगा। एक व्यक्ति कितना ही प्रतिभाशाली हो, उसकी प्रतिभा एक आयाम में ही होती है। अगर बहुत लोग जुड़कर, अलग-अलग क्षेत्र की प्रतिभा वाले लोग मिलकर कार्य करें तो वह कार्य अद्भुत व अनूठा होगा, जैसा आज तक कभी न हुआ होगा।

बुद्ध कितने ही प्यारे हों, लेकिन उनकी जीवन शैली एक आयामी है और मीरा कितनी भी प्यारी हो, उसकी जीवन शैली भी एक आयामी है। क्या ऐसा नहीं हो

सकता कि बुद्ध, मीरा, गोरखनाथ और कृष्ण जैसे लोग मिलकर कार्य करें? तब उस समृद्धि का, उस आध्यात्मिक सम्पदा का क्या कहना, वह विरल व अद्भुत घटना होगी। उसकी शुरुआत हुई है। दुनिया में चोर, डकैत आदि गिरोह बनाकर काम करते हैं, अपराधी बड़े दल बनाते हैं, राजनेताओं की पार्टियाँ हैं, अशुभ की शक्तियाँ आपस में जुड़ी हुई हैं किंतु शुभ शक्तियाँ कभी भी नहीं जुड़ी रहीं। इसलिए दुनिया में जो अशुभ का साम्राज्य दिखाई पड़ता है वह इसलिए नहीं कि अशुभ बहुत ज्यादा है। है तो वह बैलेंस्ड, प्रकृति का नियम है सन्तुलन का, शुभ और अशुभ दोनों ही बराबर हैं, लेकिन शुभ के पक्ष में खड़े लोग आपस में जुड़ नहीं पाते। उनके सूक्ष्म अहंकार की दीवारें बीच में आ जाती हैं। अशुभ व्यक्ति उतना अहंकारी नहीं होता, वह कम से कम थोड़ा जुड़ पाता है। चोर-डाकुओं के तो गिरोह बनते हैं, संगठन बनते हैं। धार्मिक लोगों के संगठन कभी नहीं बन पाए, जागृत लोग कभी मिल-जुलकर काम नहीं कर पाए। शायद ऐसा अवसर भी कभी नहीं था। न इतने जागृत लोग एक साथ कभी मौजूद थे और जो थे वे एक-एक आयामी थे और उन विभिन्न आयामों के बीच में कोई सामंजस्य नहीं बैठ सकता था। बुद्ध और मीरा अगर आपस में मिल भी जाते तो कोई सामंजस्य उनके बीच में बैठता नहीं, मिलना हो न पाता।

पहली बार ओशो ने समस्त साधना पद्धतियों का, ताओ का, झेन का, सूफी का, भक्ति का, ज्ञान का, योग का, तन्त्र का, सबका सामंजस्य बिठाया है। उनके बीच जो समन्वय सेतु हैं, उनको उद्‌घाटित किया है। केवल आज यह सम्भव है, ओशो के बाद ही ऐसा अभूतपूर्व होना सम्भव है कि भिन्न-भिन्न धाराओं से, विभिन्न साधना पद्धतियों से चलकर जिन लोगों के फूल खिले, उन फूलों का एक गुलदस्ता बन सके। वह गुलदस्ता पुराने सभी फूलों को मात कर देगा। पुराने फूल कितने ही सुन्दर हों, अकेले-अकेले थे, उनकी खुशबू एक ही प्रकार की थी। एक बगीचे में गुलाब भी लगे हों, केवड़ा भी लगे हों, चम्पा भी हों, चमेली भी हों, रातरानी भी हो, तो वह बगीचा बहु-आयामी ढंग से समृद्ध होगा। केवल गुलाब ही गुलाब की खेती भी हो सकती है, लेकिन वह एकरसता और उबाऊ घटना होगी।

ओशो के बाद आध्यात्म जगत में एक नए प्रकार की समृद्धि सम्भव हुई है। तो ओशो आचार्य संघ का निर्माण ओशो के बाद ही सम्भव हो सकता था। इसके पहले तो हम सोच भी नहीं सकते कि कोई योगी किसी भक्त से मिल सकता था। आपस में तो केवल टकराहट ही होती थी, मिलना तो संभव ही न था। मिलन के बिन्दु उजागर नहीं

थे। ओशो वह महत्त कार्य कर गए, वह भूमिका निर्मित कर गए जहाँ पर एक आचार्य संघ आगे काम कर सकता है। और यह आचार्य संघ निरन्तर विकासमान रहेगा। इसकी कोई सीमा नहीं होगी कि कितने लोग? कितने भी लोग जुड़ सकते हैं और कोई बन्धन नहीं होंगे। प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है और उसकी स्वतन्त्रता का सम्मान है। वह जैसा है अपने अनूठेपन में... उसका अनूठापन, उसकी अद्वितीयता स्वीकृत है। किसी को काटने-छांटने की जरूरत नहीं है। हर फूल अपनी अलौकिक सुगन्ध के साथ, अपने रंग और रूप के साथ, अपने सौन्दर्य के साथ इस गुलदस्ते में जुड़ सकता है। यह अद्भुत घटना धरती पर पहली बार घट रही है। इसका बड़ा लाभ यह होगा कि यह जो जीवन्त धारा है, यह नए-नए मोड़ लेती चलेगी, नई-नई प्रतिभा का योगदान इसमें होता रहेगा; हम कभी द्वार-दरवाजे बन्द नहीं करेंगे कि बस, अब नए आदमी को प्रवेश नहीं मिलेगा।

अतीत में ऐसा हुआ है। एक-एक व्यक्ति की धारा तो चली... जैसे सिक्ख सम्प्रदाय में गुरुनानक से धारा चली दसवें सिक्ख गुरु तक, फिर उसके बाद धारा को बन्द कर दिया गया और कहा गया कि अब ग्रन्थ को ही गुरु मानो। अब कोई जीवित गुरु नहीं होगा। महावीर पर आकर जैन धारा समाप्त हो गई, उन्होंने इंकार कर दिया कि बस, २४ के बाद अब कोई तीर्थंकर नहीं हो सकता।

अगर एक-एक व्यक्ति काम करेगा, उसके पास जो साधक आयेंगे, उनमें से एक खास टाइप के लोग ही उस आचार्य से लाभान्वित हो सकेंगे। वह आचार्य सभी के काम न आ सकेगा। समझो वह आचार्य स्वयं भक्ति के मार्ग से चला है, तो केवल भक्त प्रकार के लोग ही उसके पास विकसित हो सकेंगे, केवल उनको ही रस मिल सकेगा। शेष लोग जो भक्त नहीं हो सकते, उनकी कोई जगह वहाँ नहीं हो सकेगी। या तो उन्हें खाली हाथ वापस जाना होगा अथवा वे व्यर्थ ही अपना जीवन खराब करते रहेंगे। वे कितनी ही मेहनत करें उनकी मेहनत काम न आयेगी क्योंकि वह गुरु जो सिखा रहा है वह एक विशेष मार्ग है। उस विशेष मार्ग पर जो चल सकते हैं, जिनकी सहज प्रवृत्ति है उस मार्ग की, केवल वही उस मार्ग से मंजिल तक पहुँच पायेंगे। लेकिन मनुष्य जाति में बहुत विविधता है। सब एक मार्ग से न जा सकेंगे।

आचार्य संघ के साथ जो सबसे बड़ी क्रान्ति घटित हो रही है और भविष्य में और भी विराट रूप में घटित होगी; वह यह कि सभी प्रकार के साधक-साधिकाएँ मार्ग पा सकेंगे। सभी मार्ग उपलब्ध होंगे। जो जिस मार्ग से चलना चाहे, उस मार्ग से पहुँच

जाए। उसके लिए गाइडेंस-मार्गनिर्देर्शन उपलब्ध होगा। ओशो आचार्य संघ आध्यात्म जगत में एक बड़ी क्रान्तिकारी भूमिका निभाना शुरू कर चुका है और इसका बहुत ही सुनहरा और उज्जवल भविष्य नजर आता है। एक राजमार्ग बन सकेगा। कोई भी व्यक्ति, किसी भी टाईप का आ जाए, वह जिस मार्ग से चलना चाहे, उस मार्ग से स`ले जाया जा सकेगा... परम मंजिल तक। किसी के भी भटकने की, चूकने की, अटकने की, रिक्त लौटने की अब जरूरत नहीं है।

तीसरा प्रश्नः क्या गुरु के प्रति समर्पण के बिना संबोधि संभव है?

संभव तो है, लेकिन वह ऐसे ही होगा जैसे कोई पूछे कि क्या प्रेम भावना के बिना भी बच्चे पैदा करना संभव है। संभव तो है, बलात्कार किया जा सकता है, प्रेम के नाम पर धोखा दिया जा सकता है। बच्चा तो पैदा हो जायेगा, लेकिन याद रखना उसके साथ वह प्रेमपूर्ण नाता न बनेगा। बच्चा तो पैदा हो जायेगा, किंतु तुम उसके पिता न हो पाओगे। तुम्हारे अंदर पितृत्व पैदा न हो पाएगा। बिना समर्पण के भी संबोधि संभव है। एक अनाथ संतान को जन्म मिल जायेगा। वह संबोधि भी रूखी-सूखी, दीन-हीन ही होगी। बिना प्रेम के, बिना समर्पण के, बिना श्रद्धा के कोई हठात बलपूर्वक भी संबोधि को पा सकता है, लेकिन वह छिटक-छिटक जायेगी। वह हाथ में रह न सकेगी। पा लोगे उसे, कुछ समय के लिए सतोरी के रूप में मिल भी जायेगी, लेकिन वह गहन अनुभूति तुम्हारे लिए एक स्थाई अनुभव न बन सकेगी। वह हाथ से फिर छूट जायेगी। पुरानी तन-मन से तादात्म्य की अवस्था पुनः हावी हो जाएगी।

मैंने सुना है कि-

एक महाशय ने दफ्तर में अपने साथी को बताया कि मेरी जिंदगी के पिछले पांच माह खुशियों का झूला झूलते बीते, मेरी बीबी और दोनों बच्चों ने भी जीवन का भरपूर सुख लिया; पर आज से हमारे जोरदार झगड़े शुरु हो गये हैं।'

मित्र ने पूछा-'इस अचानक परिवर्तन का क्या कारण है?'

उन महाशय ने उत्तर दिया-'वह पांच माह के बाद आज ही बच्चों सहित मायके से वापस आ गई है।'

पुरानी तन-मन से तादात्म्य की अवस्था वापस लौट आएगी... मेरी बात सुनकर शायद आपको आश्चर्य लग रहा होगा! इस ढंग से आपने कभी सोचा न होगा। मैं निवेदन करना चाहूँगा ओशो के दो प्रवचन पढ़ने के लिए। ओशो ने झेन मास्टर्स के

ऊपर बोलते हुए एक श्रृंखला ईशान के ऊपर प्रवचन दिए हैं। ईशान का पहला और दूसरा प्रवचन पढ़ना। ओशो ने इस बात को समझाया है कि संबोधि की घटना के बाद भी कल्टीवेशन की जरूरत पड़ती है, पोषण की जरूरत पड़ती है, तब जाकर वह संबोधि का जो नया अंकुर जन्मा है, वह एक विराट वृक्ष बन पाता है। नहीं तो विराट वृक्ष नहीं बन पायेगा। बीज में अंकुरण तो आ सकता है, ठीक भूमि न भी मिले प्रेम की, समर्पण की, श्रद्धा की तो भी बीज अंकुरित हो सकता है, लेकिन बस दो-चार पत्तियाँ आकर कुम्हलाना भी शुरू हो जायेगा। वह टिकेगा नहीं, वह एक विराट वृक्ष न बन सकेगा जिसके नीचे हजारों लोग विश्राम और छाया पा सकें। वह परम सौंदर्य की घटना न घट सकेगी। संबोधि मिल तो जाएगी लेकिन हाथ से फिर फिसल जाएगी। वह तुम्हारी कभी न हो सकेगी। तुम गुरु तक के न हो सके, तुम परमात्मा के कैसे हो पाओगे? तुम आदर-सम्मान से न भर सके, तो भक्ति-भाव से कैसे भर पाओगे? प्रेम महत्वपूर्ण है, समर्पण महत्वपूर्ण है, श्रद्धा महत्वपूर्ण है। उसी से संबोधि में भी रस आता है, सुवास आती है; नहीं तो वह बिना सुवास वाला फूल हो जाएगी। फूल तो होगा, लेकिन उसमें सुगन्ध न होगी। बड़ी गरीबी, बड़ी दरिद्रता उसमें झलकेगी। पह बड़ा दीन-दरिद्र फूल होगा। कहना तो फूल ही होगा, फूल तो है। लेकिन और बहुत-कुछ अतिरेक में हो सकता था, वह नहीं हो पायेगा।

इस बात को स्मरण रखना गुरु के प्रति समर्पण के बिना संबोधि सम्भव है। लेकिन वह संबोधि बड़ी अधूरी-अधूरी होगी, उसमें प्रेम की सुवास न होगी, उसमें भक्ति के गीत न जन्मेंगे, उसमें माधुर्य न होगा, उसमें सौन्दर्य न होगा। ओशो ने 'सहज समाधि भली' प्रवचन माला में कबीर के सूत्रों पर पहले और अन्तिम प्रवचन में बड़ी अद्भुत व्याख्या की है। प्रत्येक समाधि साधक के लिए पठनीय पहला सूत्र है-

'साधो सहज समाधि भली

गुरु प्रताप जा दिन से लागी, दिन-दिन अधिक चली।'

कबीर कहते हैं गुरु की कृपा से जो समाधि मुझे मिली है वह दिन-दिन फल-फूल रही है; और-और विकसित हो रही है और यही सहज समाधि है। बिना गुरु की कृपा के, बिना गुरु के प्रति प्रेम से जो समाधि घटेगी, वह इस प्रकार की समाधि नहीं होगी। तुम कबीर की तरह गा न सकोगे कि 'दिन-दिन अधिक चली'। वह दिन-दिन अधिक नहीं चलेगी। दिन-दिन मुर्झाती चली जाएगी। वे जो दो-चार पत्तियाँ आ गई थीं, अंकुर निकल आए थे, कालान्तर में वे भी सूख जायेंगे, बासे पड़ जायेंगे। प्रेम की भूमि में,

भाव की भूमि में, हृदय में उस अंकुर को आरोपित नहीं किया तो जल्दी ही वह अंकुर कुम्हलाने लगेगा, मुरझाने लगेगा और नष्ट हो जायेगा। फिर केवल एक याददाश्त ही रह जायेगी कि संबोधि घटित हुई थी और थोड़े दिनों के बाद उस पर भी शक उत्पन्न होने लगेगा कि सचमुच में हुई थी कि कल्पना कर ली मैंने, कि मैंने कोई स्वप्न देख लिया था! क्योंकि अगर वह स्थाई नहीं रही, दिन-दिन अधिक फली-फूली नहीं, रोज-रोज नए-नए पत्ते नहीं उपजे, नई कोपलें नहीं फूटीं; तो तुम्हारा विश्वास खंडित हो जायेगा कि जो हुआ था वह कहीं सपना ही तो नहीं था... जो मैंने देख लिया था कि अंकुर निकला। फिर गया कहाँ वह? कहाँ विलीन हो गया? कल्टीवेशन चाहिए, उसका भी पोषण चाहिए। वह पोषण तभी हो सकेगा जब तुम्हारा हृदय गुरु के हृदय के साथ जुड़ गया हो। प्रेम के उस वातावरण में वह अंकुर एक वृक्ष बन सकेगा। अन्यथा संभव नहीं है। हाँ, संबोधि घटना संभव है, अंकुर आना संभव है लेकिन वह दिन-दिन फलेगी-फूलेगी नहीं। 'सहज समाधि भली' के अंतिम प्रवचन में कबीर का सूत्र है-

'सहज मिले जो दूध सम, माँगे मिले सो पानी,
कहै कबीर वह रक्त सम, जामे खैंचा तानी।'

जो सहज मिल जाए वह तो दूध के समान है, अमृत-तुल्य है, जो प्रेमपूर्वक मिले, सहजता से मिले। माँग-माँग के जो मिले वह पानी के समान है, वह उतनी कीमती बात नहीं रही। और खींचातानी करके, बलात्कार करके, जबरदस्ती छीना-झपटी से जो लेना पड़े, मिल तो जाएगा हटात चेश से भी; लेकिन वह बात तो खून के समान हो गई- 'कहै कबीर वह रक्त सम, जामे खैंचा तानी'।

तो तीन प्रकार से सम्बोधि को पाया जा सकता है। एक योगियों का मार्ग रहा है, उल्टे-सीधे आसन-प्राणायाम, बलात् चेष्टा कर रहे हैं, हठयोग साध रहे हैं। न जाने कितना कष्ट अपने आप को दे रहे हैं, जंगल भाग गए, उपवास कर रहे हैं, तपस्या कर रहे हैं। ये दुष्ट खींचातानी कर रहे हैं परमात्मा के साथ भी। इनको भी मिल जाएगा परमात्मा। लेकिन कबीर की दृष्टि में वह कोई बहुत श्रेष्ठ घटना नहीं, सबसे निकृष्ठ ढंग की उपलब्धि है; संबोधि का सबसे निचला स्तर- 'कहै कबीर वह रक्त सम, जामे खैंचा तानी।' बड़ा खून-खराबा, परमात्मा के साथ भी कुश्तम-कुश्ती हो रही है। उपवास कर रहे हैं, भूखे मर रहे हैं, काँटों की सेज पर लेटे हैं, कठिन-कठिन आसन साध रहे हैं, पता नहीं क्या-क्या सर्कस के खेल कर रहे हैं! बड़ा उपद्रव मचा रहे हैं। इन उपद्रवी लोगों को भी मिल जाता है परमात्मा। परमात्मा बड़ा कृपालु है।

लेकिन कबीर की दृष्टि में यह 'भली' नहीं है। वे कह रहे हैं- 'सहज सामाधि भली', और याद रखना ओशो ने शीर्षक चुना है किताब का। समझ सकते हो ओशो ने इसका कितना महत्त्व जाना- 'सहज समाधि भली'। समाधि कई प्रकार की हो सकती है। लेकिन कबीर की दृष्टि में, ओशो की दृष्टि में भली समाधि कौन-सी है? जो गुरु कृपा से मिली और दिन-दिन अधिक फलती-फूलती चली।

दूसरी, मध्यम स्तरीय समाधि माँगने वालों की है- प्रार्थना कर रहे हैं, रो रहे हैं, गिड़गिड़ा रहे हैं, सिर पटक रहे हैं मूर्तियों के सामने, इन भिखारियों को भी मिल जायेगी संबोधि। अगर न माने ये, रोते ही रहे, रोते ही रहे, माँगते ही रहे, माँगते ही रहे, इनको भी मिल जायेगी। लेकिन कबीर की दृष्टि में ये भी नम्बर दो पर हैं- 'माँगे मिले सो पानी'। इनको जो मिला वह पानी के समान है, वह दूध नहीं है, वह अमृत नहीं है। मिला, इन भिखमंगों को भी मिला, परन्तु पानी के समान मिला। इनके आग्रह में भी एक सूक्ष्म हिंसा मौजूद है। प्रार्थना में एक तरह का दवाब है।

मैंने सुना है कि- गुलजान ने अपनी सहेलियों से निवेदन किया कि इस बार मेरे बर्थ-डे पर कुछ विशेष उपहार अवश्य देना। आग्रह को भला कौन टालता?

भांति-भांति के पक्षी पालने की शैकीन श्रीमती चंदूलाल ने अपनी सहेली गुलजान के जन्मदिन पर उसे एक ऐसा पक्षी दिया, जो अच्छी तरह गाने गा लेता था और गाते हुए नाचता भी था। उसने पक्षी को पांच हजार रुपए में खरीदा था। कुछ दिनों के बाद जब उसे गुलजान मिली, तो उसने पूछा-'तुम्हें वह पक्षी कैसा लगा?'

गुलजान बोली- 'हाय, मैं तो तुम्हें शुक्रिया कहना ही भूल गई थी, वह पक्षी बहुत ही स्वादिष्ट लगा'।

गीत- जरा सूक्ष्म बात है, स्वाद- स्थूल रस है। तुम्हें मांगने पर भेंट मिल भी जाए तो तुम उसका पूर्ण आनंद न ले सकोगे। भिखारी को आनंदित होने की कला नहीं आती। भिखारी को अच्छी से अच्छी भेंट भी भली नहीं लगेगी।

'सहज समाधि भलि,
गुरु प्रताप जिन दिन से लागी,
दिन-दिन अधिक चली।'

...कबीर की बात से ओशो भी सहमत हैं। तुम पूछते हो कि बिना गुरु समर्पण के क्या संबोधि संभव है? संभव तो है, लेकिन वह 'भली समाधि' नहीं होगी। वह 'भली संबोधि' नहीं होगी। जब 'भली प्रकार से' पा सकते हो तो क्यों छीना-छपटी करनी?

प्रेम से जो चीज मिल सकती है, उसे क्यों जबरदस्ती हासिल करना? कोई आदमी पूछे कि क्या धन पाने के लिए मेहनत करना जरूरी है?क्या बिना मेहनत किए धन नहीं पाया जा सकता? पाया तो जा सकता है चोर बन जाओ, डकैत बन जाओ- धन तो पाया जा सकता है। लेकिन याद रखना, वह धन, वह सम्पदा तुम्हारे लिए विपदा ही साबित होने वाली है। वह जो चुराया हुआ धन है, डकैती का माल है, वह तुम्हारे जीवन में कोई ज्यादा सौन्दर्य की वृद्धि न कर पाएगा। उससे और कुछ न कुछ नए उपद्रव, झंझट ही पैदा होंगे। वह तुम्हारे लिए विपदा के रूप में ही आएगा और इसके लिए केवल तुम जिम्मेवार हो।

सद्गुरु तो उपहार देने के लिए तैयार बैठा था, सामने के दरवाजे से आके ले जाते। लेकिन कोई व्यक्ति पीछे से, पीछे की खिड़की से कूदकर, चुराके, धोखा दे के, आँख बचाके ले जाये, तो केवल वही जिम्मेवार है, कोई और जिम्मेवार नहीं। गुरु तो गिफ्ट देने के लिए तैयार था। किसी की आदत ही खराब हो, छीना-झपटी की आदत रही हो, चोरी डकैती की आदत रही हो, वह अपने ढंग से प्राप्त कर लेगा। मिल तो उसे भी जायेगा लेकिन वह ज्यादा काम में आने वाला नहीं है, इस बात को याद रखना। वह संबोधि की घटना जल्दी ही केवल एक याददाश्त ही रह जायेगी कि ऐसा-ऐसा हुआ था और कालान्तर में उस पर भी संदेह पैदा होने लगेगा कि सच में हुआ था कि नहीं? क्योंकि बाद में उसके कोई परिणाम व प्रमाण भी शेष न बचेंगे। वह बात आई-गई... सपने की तरह तिरोहित हो जायेगी।

चौथा प्रश्नः जब भी किसी ऐसे मित्र से, जो लम्बे समय से ओशो की ध्यान विधियों को कर रहा है, इस कार्यक्रम की चर्चा करते हैं तो वह यकीन ही नहीं कर पाता कि कोई कार्यक्रम इतना प्रभावशाली हो सकता है। अप्रसार व्रत के कारण हम कुछ ज्यादा कहने में समर्थ नहीं हो पाते। हम क्या करें?

समाधि कार्यक्रम के जो परिणाम तुम्हारे जीवन में हो रहे हैं उनकी बात कहो। और कहने से ज्यादा महत्त्वपूर्ण... तुम्हारा जीवन उसका प्रमाण बने। सिर्फ शब्दों में कहने से ही नहीं होगा, तुम्हारे पूरे जीवन में वह बात स्पष्ट दिखाई दे, छलके। धीरे-धीरे लोगों को दिखाई पड़ना शुरू हो जायेगा। अप्रसार व्रत में दो बातें गोपनीय रखनी हैं- क्या आपने जाना और कैसे उसे जाना? लेकिन उसके परिणामों की चर्चा आप मजे से

कर सकते हैं। आपके जीवन में जो रूपांतरण आ रहे हैं, जो आनन्द घट रहा है, जो शान्ति मिली है, उनकी आप खूब चर्चा करें। हाँ, एक बात उसमें कहना चाहूँगा कि बढ़ा-चढ़ा के बिल्कुल नहीं, जितना आनन्द आपको आया है, उससे थोड़ा कम चर्चा करना। बीस को आप उन्नीस, अट्ठारह या सत्तरह ही बताना बीस का इक्कीस तो करना ही नहीं बीस भी मत बताना। थोड़ा कम करके ही बताना।

इससे दो फायदे होंगे- पहली बात, उस व्यक्ति को आसानी से यकीन आ पायेगा। आप कह रहे हो कि उन लोगों को यकीन ही नहीं आता कि कोई कार्यक्रम इतना प्रभावशाली हो सकता है। उन्हें पूरा प्रभाव मत बताना। पच्चीस प्रतिशत डिस्काउंट सहित.... थोड़ा कम करके बताना, सौ की जगह पिच्चत्तर की ही बात करना ताकि उन्हें यकीन आ सके। और दूसरी बात, इसका एक लाभ और होगा कि जब वे मित्र कार्यक्रम करने के लिए यहाँ आयेंगे तब उनके लिए नवीनता मिलेगी। वे जितना सोचकर आये थे, उससे उनको ज्यादा मिलेगा; वह बात भी महत्वपूर्ण है। यदि कोई व्यक्ति बहुत बड़ी अपेक्षाएं लेकर आ जाये तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। उसको हमेशा उसकी अपेक्षा की तुलना में सत्य कम ही लगता है। फिर वह निराश होगा, दुःखी होगा। तो क्यों अपने मित्रों को दुःखी करना? उन्हें उतना मत बताना जितना तुम्हें वास्तव में मिला है, उससे बहुत कम बताना। ताकि जब वे आयें तो वे आपको धन्यवाद दें कि आपने जो बताया था उससे भी ज्यादा मुझे प्राप्त हुआ। तब मामला ठीक जमेगा।

ओशो सिद्धार्थ जी एक घटना का एक वर्णन करते हैं कि उनके गाँव का एक आदमी ताजमहल देखने आगरा गया। जब वह लौटकर आया तो गाँव में सभी लोगों ने पूछा कि ताजमहल कैसा है? उसने बताया कि कोई खास नहीं... जैसा अपने गाँव का जो पुराना मन्दिर का खण्डर है, अरे बस वैसा ही समझो। ऐसा कुछ खास नहीं है। सफेद पत्थर लगे हैं उसमें संगमरमर के, लगभग वैसा ही जैसा अपने गाँव का मन्दिर है, शायद थोड़ा अधिक सुंदर। ऐसी कोई खास बात उसमें नहीं है। किसी को विशेष रूप से जाने की जरूरत नहीं। कभी संयोगवश आगरा से गुजरो तो देख लेना।

ओशो सिद्धार्थ जी कई वर्षों के बाद जब पहली बार संयोगवश आगरा गए तो उनके मन में यह बात बैठी हुई थी, जो उनके मित्र ने बताई थी। फिर जब उन्होंने ताजमहल को देखा तो हक्का-बक्का रह गए। इतना अद्भुत सौन्दर्य...! लेकिन इसका विपरीत भी सम्भव है। कई बार मैं देखता हूँ लोग कोई फिल्म देखकर आए और

उसकी बड़ी तारीफ कर देते हैं कि वाह, क्या कहानी है, डायरेक्शन इतना बढ़िया, हीरो-हीरोइन अच्छे, गाने इतने प्रभावशाली, संगीत इतना मधुर, हर चीज की अति-तारीफ कर देते हैं। उन प्रशंसा के पुलों से प्रभावित होकर जब उनका कोई मित्र फिल्म देखने जाता है तो उसको कभी भी वह फिल्म उतनी अच्छी नहीं लगती।

इसलिए सिर्फ ओशोधारा कार्यक्रमों की ही बात नहीं, सभी बातों के विषय में एक सामान्य नियम याद रखो- आप जब तारीफ करो तो जरा ख्याल रखो- जैसा आपने जाना है वैसा नहीं, उससे कम करके बताना। ताकि आपके मित्र जब आयें तो वे इसका पूरा-पूरा आनन्द ले सकें, इसमें डूब सकें और उनको लगे कि जो अपेक्षा वे लेकर आये थे उससे और भी ज्यादा यहाँ कुछ घट रहा है। तुम अप्रसार व्रत का पालन करते हुए भी अपने जीवन में घटने वाले परिणामों की बात कर सकते हो। और बात करने से भी ज्यादा और अच्छा होगा कि आपका जीवन ही इसका प्रमाण बने।

पिछले कार्यक्रम में बहुत से मित्र आए हुए थे बहुत दूर-दूर से। उनसे हमने पूछा कि कैसे आपको खबर मिली? उन्होंने कहा कि यहाँ से जो लोग ध्यान समाधि कार्यक्रम, सुरति समाधि कार्यक्रम करके गए हैं उनको हमने देखा। नजदीकी मित्र हैं, भली-भाँति उन्हें जानते हैं, पहचानते हैं, उनके जीवन में जब हमने देखा कि कुछ बदल गया है; अब यह आदमी वही नहीं रहा जैसा पहले था, तब हमें भी प्रेरणा उत्पन्न हुई कि हम भी आयें और वह गुह्य रहस्य जानें जो जीवन में क्रान्ति लाता है। तो अप्रसार व्रत का पालन करते हुए भी आप कार्यक्रम के परिणामों से अपने मित्रों को अवगत करा सकते हैं।

अध्याय-5

गृहस्थ, संन्यस्त, ध्यानस्थ व समाधिस्थ

1. गुरु-वाणी के शबदों के जादू के विषय में...!
2. नानक व ओशो द्वारा गृहस्थाश्रम पर जोर क्यों?
3. भाव, कल्पना, अनुभव एवं अनुभूति में फर्क?
4. ध्यान, समाधि, सतोरी और सम्बोधि में भेद?
5. समाधि के बिना प्रभु को जाना जा सकता है?

प्रश्नः यहाँ जो शबद बजाए जा रहे हैं, बहुत मीठे, प्यारे एवं रस विभोर कर अपने में डुबाने वाले हैं। आपके मुखारविंद से उनका अर्थ समझते हुए भी हमलोग उनके पूर्ण गिरफ्त में आ जाते हैं। यह कीमिया आपको कैसे हाथ लगी? अपने ही श्रीमुख से कुछ कहने की कृपा करें।

बस संयोग ही समझो। हम लोग माधोपुर (पंजाब) गए। वहाँ पर एक मित्र ने ओशो सिद्धार्थ जी को कुछ कैसेट्स गिफ्ट में लाकर दिया, शबद की धुनें थीं उनमें। सिद्धार्थ जी ने जब सुना तो बहुत भाव-विभोर हो गए। उन्होंने मा ओशो प्रिया को व मुझे भी सुनवाया। हमलोगों को बहुत आनन्द आया और फिर हमें लगा कि इतने प्यारे शबद हैं और इनमें इतना गहन अर्थ भी छिपा है... विशेष रूप से गुरु-शिष्य प्रेम के ऊपर, श्रद्धा के ऊपर, समर्पण के ऊपर और परमात्मा के नाम के ऊपर, सतनाम के ऊपर ही सारे शबदों की रचना है। हमारे समाधि कार्यक्रमों से मेल खाती है बात। बस दो ही बातें तो सिक्ख गुरु साहेबान सिखा रहे हैं- प्रेम में डूबो और सतनाम में डूबो। मुख्य रूप से ये दोनों ही बातें सभी शबदों में हैं। इसलिए हमने सोचा कि क्यों न इन्हें ही आधार बनाया जाये अपनी बात कहने के लिए।

याद रखना, जो भी हम आपसे कह रहे हैं वह कुछ भी नया नहीं है। अतीत में जो गुरु हुए हैं, उन सबने भी यही बात कही है। अध्यात्म की सारी खोज 'री-डिस्कवरी' है। पुनः-पुनः वही खोजना पड़ता है। क्योंकि परम सत्य फिर-फिर खो जाता है। इसलिए पुराने संतों की बात को आधार बनाकर अपनी बात को कहना बहुत सरल है। ओशो ने यह परम्परा शुरू की। ओशो ने अतीत के सारे संतों के ऊपर व्याख्यान दिये। ओशो से पहले कभी किसी ने ऐसा नहीं किया था। ओशो ने हमारे हृदय को बहुत विराट किया। हमारी संकीर्ण धारणाएँ तोड़ीं, क्षुद्र मान्यताएँ छुड़ाईं। अब हम एक विराट दृष्टि से, एक विहंगम दृष्टि से दुनिया के सारे संतों को समझ सकते हैं।

तो ओशो की इस जीवन्त धारा में इस प्रक्रिया को आगे भी जारी रखा जायेगा। अतीत के संतों के वचनों को आधार बनाकर समझाया जायेगा। क्योंकि बात तो वही है जो अलग-अलग रंगों से, अलग-अलग ढंगों से, अलग-अलग शब्दावली में अतीत के संतों ने कही है। अध्यात्म की खोज कोई नई खोज नहीं है। वही सनातन सत्य है, एक ही है वह परमात्मा- एक ओंकार सतनाम। उसे आज से दस हजार साल पहले किसी ने खोजा हो कि पाँच सौ साल पहले किसी ने खोजा हो, कि आज कोई खोजे, कि आज से एक लाख साल बाद खोजे, उसी एक परमात्मा को ही खोजेगा। वह तो सनातन सत्य है- एस धम्मो सनंतनो। इसलिए अतीत के संतों की बात को आधार बनाकर हम अपनी बात कह सकते हैं, संप्रेषित कर सकते हैं और इस कार्य में सिक्ख गुरुओं के ये शबद बहुत काम के हैं, बहुत उपयोगी हैं, बहुत भाव-विभोर करने वाले हैं। जैसा कि आपने कहा कि

हम पूर्णतः इनकी गिरफ्त में आ जाते हैं। उनका उद्देश्य पूरा हो जाता है। वह आपको भाव-विभोर कर दें, हृदय में परमात्मा के प्रति प्रीति जगा दें, बात बन जाती है। समाधि की पूर्व भूमिका तैयार हो जाती है। इस तरह इन शबदों का प्रयोग हम लोगों ने माधोपुर से शुरू किया और इसकी उपयोगिता देखकर, इसके परिणाम देखकर इसको फिर अन्य सब आश्रमों में भी शुरू कर दिया।

भविष्य में कबीर साहब की वाणी को भी लेने का इरादा है। भोजपुरी बेल्ट में- बिहार में विशेष रूप से, कबीर के वचनों पर, कबीर के दोहों पर निर्गुण संगीत बहुत प्रसिद्ध हुआ है। गाँव-गाँव में निर्गुण गीत गाए जाते हैं, बड़े अर्थपूर्ण और खासकर मृत्यु से सम्बन्धित। तो अमृत समाधि में हमलोग कबीर के वचनों का उपयोग करने जा रहे हैं। अभी पीछे ओशो प्रिया जी और उनकी संगीत मंडली ने मिलकर एक कैसेट रिकार्ड करवाई है। उसमें भोजपुरी भाषा में निर्गुण गीत गाए हैं। शीघ्र ही वह कैसेट उपलब्ध हो जाएगी। आगे से अमृत समाधि में उन गीतों का उपयोग होगा। भविष्य में भी जो भी सुन्दर वचन सन्तों के मिलेंगे... कहीं से भी... क्योंकि हमारा कहीं कोई रिजर्वेशन नहीं है, हमारे हृदय के द्वार खुले हुए हैं, कहीं से भी कोई 'सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम्' की झलक मिलेगी, उसका हम उपयोग करेंगे अपने साधकों को उस परम सत्य के रस में डुबाने के लिए।

प्रश्नः महान संत सत्गुरु नानक ने गृहस्थों को संन्यास दीक्षा दी। ओशो ने भी संन्यास दीक्षा देकर लोगों को गृहस्थी में ही रहने का सुझाव दिया। कृपया इस पर कुछ कहने की कृपा करें।

निश्चित रूप से ओशो ने जिस नए मनुष्य 'जोरबा दि बुद्धा' की परिकल्पना हमें दी उसकी शुरुआत गुरु नानक से ही हो गई थी। गुरु नानक पहले गृहस्थ व्यक्ति हैं जो गृहस्थ होने के साथ-साथ संन्यस्त भी थे। छः महीने अपनी खेती-बाड़ी करते थे, परिवार की देखभाल करते थे, घर-गृहस्थी की फिक्र करते थे और फिर छः महीने फुरसत के समय निकल जाते थे भ्रमण के लिए। देश के कोने-कोने में घूमने जाते थे, अपना संदेश प्रचारित करते थे। गुरु नानक ने स्वयं 'जोरबा दि बुद्धा' का पहला उदाहरण पेश किया। और आपको जानकर आश्चर्य होगा, गुरु ग्रंथ साहिब में जितने भी गुरुओं की वाणी संग्रहीत है, वे सभी संत गृहस्थ थे। चाहे वे कबीरदास हों, चाहे दादू दयाल हों अथवा संत नामदेव हों, वे सभी गृहस्थ थे; गोरा कुम्हार हों, कि रैदास चमार हों, वे सब अपना काम-धाम करते रहे, घर-गृहस्थी संभालते रहे और परमात्मा में डूबे और बहुत लोगों को परमात्मा का जाम पिलाया। गुरु ग्रंथ साहिब में केवल उन्हीं संतों के वचन लिये गए हैं। और भी बहुत सन्त हुए पिछले पांच-छः सौ वर्षों में। गुरु ग्रंथ साहिब में उन लोगों को नहीं लिया गया जो त्यागवादी थे। ओशो ने इसी बात को उसके लॉजिकल कनक्लूजन,

उसकी तार्किक निष्पत्ति तक पहुँचाया- 'जोरबा दि बुद्धा'।

सुनो यह लतीफा–

शराबी नसरुद्दीन ने आईना देखकर कहा- अरे, यह बंदा तो कुछ जाना-पहचाना सा लगता है। शायद पहले कहीं देखा है।

हाँ..... याद आ गया, मेरे घर पर रखे, मेरी शादी के एलबम में इसकी तस्वीर है। यह बंदा तो उस एलबम में मेरी बीवी के संग निकाह करा रहा है।

नसरुद्दीन के शराबी दोस्त विचित्तरसिंह ने आईना लेते हुए कहा- जरा मुझे बताओ, मैं पहचानने की कोशिश करूं। अरे, इस बंदे की तस्वीर तो मेरे शादी के एलबम में भी है। यह बेवफा और धोखेबाज है। इसने तो मेरी बीवी के संग भी ब्याह रचाया था।

यह जगत एक दर्पण है। दर्पण में हमें अपनी ही सूरत दिखाई पड़ती है। कोई अपमान कर देता है और भीतर क्रोध भभक उठता है तो कम से कम पता तो चलता है कि मेरे अंदर क्रोध का बारूद है। अगर कोई चिंगारी जलाने वाला ही न हो तो भ्रम निर्मित हो सकता है कि मैं शांत हो गया हूं। वह शांति तुम्हारी नहीं, जंगल की है। भगोड़े संन्यासी आत्म-प्रवंचना में पड़ जाते हैं। संसार एक पाठशाला है, साधना के लिए सर्वोत्तम स्थान है।

हम ओशो संन्यासियों के लिए यह बात बहुत ही महत्त्वपूर्ण है और इसलिए सिक्ख गुरुओं के साथ एक हृदय का तालमेल स्पष्ट समझ आता है। सिक्ख गुरुओं की वाणी सुनकर, शबद सुनकर जो आप इतने भाव विभोर हो जाते हैं, शायद उसका एक कारण यही है कि उनकी धारा, ओशो की धारा से मिलती-जुलती है। इसलिए ओशो की धारा में गुरु नानक की धारा, गुरु अंगददेव की धारा, गुरु अर्जुनदेव की धारा बड़ी आसानी से समाहित हो जाती है। भविष्य में और भी अनेक-अनेक संतों की वाणी इस धारा में समाहित करते चलेंगे ताकि यह धारा और बड़ी से बड़ी होती जाए। जीवंत धारा का अर्थ ही यह होता है कि वह अन्य धाराओं का पानी भी अपने में स्वीकारती चलेगी। जिस दिन से कोई धारा पानी स्वीकार करना बन्द कर देती है, वह सरिता नहीं रह जाती, वह एक तालाब बन जाती है। एक डबरा रह जाती है और डबरे का पानी फिर सड़ता है।

तो हम ओशो संन्यासियों को सदा स्मरण रखना है कि हमें ओशो की धार्मिकता की सरिता को कभी धार्मिक संगठन का तालाब नहीं बनने देना है। धर्म यानी एक तालाब, सड़ा हुआ पोखर और धार्मिकता यानी भगवत्ता की बहती हुई नदी, एक सरिता- सतत प्रवाहमान। ओशो की यह जीवन्त धारा एक प्रवाहमान सरिता है धार्मिकता की। इसमें बहुत पानी आ-आकर मिलता रहेगा और मिलना ही चाहिए ताकि नदी तरो-ताजा रहे। नदी गतिमान बनी रहे

प्रश्नः भाव, कल्पना, अनुभव एवं अनुभूति में क्या फर्क है? भाव एवं

कल्पना ध्यान में किस प्रकार सहयोगी हैं?

भाव के मुख्यतः तीन अर्थ हैं- पहला- फीलिंग्स, इमोशंस या भावनाएँ; दूसरा- धारणा या कंटेम्प्लेशन। भाव का उपयोग कल्पना या इमैजिनेशन के अर्थ में भी कभी-कभी किया जाता है। तो तीन प्रकार से इसके अर्थ हो सकते हैं। अनुभव और अनुभूति में सूक्ष्म भेद है। अनुभूति यानी वर्तमान में जो घटना घट रही है, उसका बोध, और अनुभव यानी वह अनुभूति जो अब अतीत की स्मृति हो चुकी। समझो अभी आपने अपने मुँह में चॉकलेट रखी और अभी उसका स्वाद ले रहे हैं, तो स्वाद की यह घटना अनुभूति कहलाएगी- एक्सपीरिएंसिंग। फिर चॉकलेट समाप्त हो गई, आप कह सकते हैं कि मैंने चॉकलेट के स्वाद का अनुभव किया था- एक्सपीरिएंस। अब वह अनुभव हो गया, वह बात अतीत की हो गई, पास्ट-टेंस की। फिर आप इस अनुभव के आधार पर, किसी नई प्रकार की चॉकलेट के स्वाद की कल्पना कर सकते हैं, जो आपने चखी नहीं है, केवल उसके बारे में सुना है। और आप चाहें तो अपनी कल्पना एवं स्मृति के आधार पर आप भाव कर सकते हैं। उसे मानसिक रूप से पुनः सघनीभूत कर सकते हैं।

भावनाओं का उपयोग सम्मोहन के लिए किया जाता रहा है। अगर आप कोई भाव बारम्बार प्रगाढ़ रूप से रिपीट करें, उसकी पुनरावृत्ति हो, वह भाव एक प्रकार का सम्मोहन निर्मित करता है। उदाहरण के लिए अगर कोई व्यक्ति बारम्बार इस भाव को प्रगाढ़ करे कि मैं चॉकलेट का स्वाद ले रहा हूँ। तो उसे चॉकलेट का स्वाद आना शुरू हो सकता है। लेकिन यह एक सम्मोहन होगा। फिर भाव का एक दूसरा उपयोग है सम्मोहन को काटने के लिए, डी-हिप्नोसिस यानी पुराने सम्मोहन को तोड़ना। इसलिए भावनाओं का, धारणाओं का और कल्पनाओं का उपयोग भी ध्यान के लिए किया जा सकता है, किया जाता रहा है।

पतंजलि ने अपने अष्टांग मार्ग में अंत में गिनाए हैं- धारणा, ध्यान, समाधि। ध्यान के पहले धारणा का उपयोग किया जा सकता है सत्य को जानने के लिए। लेकिन वे धारणाएँ दूसरे प्रकार की होंगी। सम्मोहनविद जिस प्रकार की धारणा पैदा कर रहा है उस प्रकार की नहीं होंगी। तो हमारी कल्पनाएँ दो प्रकार की हो सकती हैं- एक सत्य से मिलती-जुलती और एक सत्य के विपरीत। जो कल्पना सत्य के विपरीत है, यदि हम उसका भाव करते रहें तो हम एक कल्पनालोक में, स्वप्नलोक में खो जायेंगे। सत्य से और भी दूर हो जायेंगे, वह ध्यान में नहीं ले जा सकेगी। लेकिन कल्पना ऐसी भी हो सकती है, जिसका सत्य के साथ तालमेल है। यदि उस भाव में कोई व्यक्ति डूबे, उस धारणा को साधे, वह ध्यान में ले जाने में सहयोगी होगी।

एक उदाहरण से समझें- सामान्यतः आप मानते हैं कि आपके शरीर का आकार ही आपका आकार है। यह एक लम्बे समय से की गई धारणा का परिणाम है। सचमुच में

यह शरीर का आकार आपका आकार नहीं है। एक दिन आप बहुत छोटे-से बच्चे थे। उस दिन आपके शरीर का आकार बिल्कुल भिन्न था। छः महीने के थे आप, उस समय के फोटोग्राफ्स आप देखें तो स्वयं को पहचान भी न सकेंगे। लेकिन एक दिन वही आप थे! और पहले चलें... कभी माँ के गर्भ में आप थे। छः दिन के थे, उस समय का फोटोग्राफ तो इतना छोटा होगा कि उसे देखने के लिए भी लेंस की जरूरत पड़ेगी, माइक्रोस्कोप से देखे जा सकते थे। एक दिन वही आपका शरीर था, वही आपका आकार था। पैदा होने के बाद रोज-रोज आकार बदलता चला गया। कभी आप बच्चे थे, फिर किशोर हुए, फिर जवान हुए, फिर प्रौढ़ हुए, फिर बूढ़े होने लगे- कितने आकारों में, कितनी शक्ल-सूरतों में आप रहे। लेकिन हर बार सम्मोहन यही रहा कि आज जो आकार मेरा है, वही मैं हूँ। यह एक प्रकार का प्राकृतिक सम्मोहन है।

इस सम्मोहन को एक दूसरे प्रकार के प्रति-सम्मोहन से तोड़ा जा सकता है। इसका ठीक उल्टा भाव किया जाए कि मैं निराकार हूँ, मेरा कोई रूप नहीं है, मेरी कोई आकृति नहीं है। इस भाव को प्रगाढ़ किया जाए तो शुरुआत में तो यह केवल कल्पना ही होगी, एक इमैजिनेशन। लेकिन अगर इस भाव को प्रगाढ़ रूप से किया जाए तो बहुत जल्दी आप शरीर के बाहर, वह जो आपकी निराकार चेतना फैली हुई है भीतर-बाहर, उसे महसूस कर पायेंगे; ध्यान में जाने में सहयोग मिल जायेगा। अरूप को जानने में मदद मिल जाएगी।

वे धारणाएँ जो सत्य से तालमेल रखती हैं, जो सत्य के अनुकूल हैं, उनका उपयोग ध्यान में जाने के लिए किया जा सकता है। अन्य धारणाएँ जो सत्य के प्रतिकूल हैं, मैच नहीं करतीं यथार्थ से, यदि उनमें हम गए तो सत्य से और भी दूर चले जायेंगे। ध्यान में जाने के बजाय स्वप्नलोक में खो जायेंगे। माया में उलझ जाएंगे।

इमोशंस के रूप में दो प्रकार की भावनाएं हैं- दुर्भावनाएं और सद्भावनाएं। साधक को प्रथम से अपनी जीवन-ऊर्जा हटाकर द्वितीय में संलग्न करनी है। घृणा और क्रोध की गर्त से निकलकर करुणा और प्रेम के शिखर पर चढ़ना है। द्वेषभाव के स्थान पर मैत्रीभाव, तादात्म्यभाव की जगह साक्षीभाव को बढ़ाना है। शिकायतभाव के स्थान पर अहोभाव को साधना है। धीरे-धीरे सद्भावनाओं के भी पार यात्रा करनी है। अंततः भावातीत लोक में प्रवेश करना है। किंतु सीधे दुर्भावनाओं से कोई भावातीत नहीं हो सकता। दुर्भावनाएं नरक निर्मित करती हैं, सद्भावनाएं स्वर्ग पैदा करती हैं। भावातीत दशा मोक्ष है- दोनों के पार। मोक्ष जाने का द्वार स्वर्ग से होकर खुलता है। नरक से मोक्ष जाने का कोई रास्ता नहीं है।

प्रश्नः ध्यान, समाधि, सतोरी और सम्बोधि में क्या भेद हैं?

चारों एक ही घटना के सोपान हैं। ऐसा समझो एक सीढ़ी है अध्यात्म की, उसके ये चार पायदान हैं। शुरुआत होती है ध्यान से। ध्यान यानी साक्षीभाव- निर्विचार जागरुकता, चॉयसलेस अवेयरनेस; वहाँ से शुरुआत होती है। सामान्यतः हम संसार के बहुत से ऑबजेक्ट्स में, विषयों में खोए हुए रहते हैं। अनेक विषयों में हमारा चंचल मन भाग-दौड़ कर रहा होता है। उन सहस्त्रों विषयों को छोड़कर हम एक त्रिकोण बनाते हैं- द्रष्टा, दृश्य और साक्षी का। भूल जाता है वह संसार, जिसमें हजारों कोण थे। सिर्फ तीन बिन्दु रह जाते हैं- पहला दृश्य, दूसरा उसे देखने वाला द्रष्टा, और इन दोनों के ऊपर त्रिकोण का तीसरा कोण साक्षी, जो इन दोनों को भी जान रहा है। दृश्य और द्रष्टा दोनों के पार, जो द्रष्टा को भी देख रहा है- वह साक्षी। संक्षेप में ध्यान यानी साक्षीभाव। पहली सीढ़ी।

दूसरा है समाधि। अब तीन भी मिट जायें, बस एक ही बचे। शुरुआत में यह घटना अस्थाई रूप से घटेगी, थोड़ी देर के लिए घटेगी, कुछ समय के लिए तीन विलीन हो जायेंगे और एक ही बचेगा, उसका नाम है समाधि, फिर वापस लौटना होगा। पतंजलि इसे कहते हैं सविकल्प समाधि। विकल्प मौजूद है, समाधि में जाना होगा, फिर वापस लौटना होगा। थोड़ी देर के लिए, कुछ क्षणों के लिए 'परम' के संग एक हो जायेंगे। लेकिन वह अवस्था ज्यादा देर नहीं रहेगी। फिर वापस अपनी सामान्य अवस्था में आ जायेंगे। फिर एक से तीन में और तीन से हजारों में, पूरे संसार में लौट आयेंगे।

यहाँ आपको स्मरण दिलाना चाहता हूँ ओशो ने पूना में, 1974 में रजनीश फाऊंडेशन का जो प्रतीक चिन्ह बनाया था, उसे जरा स्मरण करें। बीच में एक बिन्दु था छोटा-सा, उसके बाहर एक त्रिकोण, त्रिकोण के बाद फिर नौ कोण का घेरा और नौ कोण के बाद फिर एक वृत्त। बड़ा वाला वृत्त यानी जीवन की सबसे बाह्य परिधि, अनन्त विराट का प्रतीक। भीतर का छोटा-सा बिन्दु, छोटा-सा वृत्त यानी आंतरिक शून्य का प्रतीक। शून्य से यात्रा शुरू होती है, शून्य टूटता है तीन में। जैसे एक जड़ में से तीन पत्ते निकले हों- तीन छोटी-छोटी कोपलें, फिर वे तीन शाखाएँ बन जाती हैं। उन शाखाओं से फिर प्रशाखाएँ निकलती हैं, तीन से नौ हो जाते हैं। फिर उन प्रशाखाओं में और छोटी-छोटी डालियाँ 9 से 27, 27 से 81.... और फिर क्रमशः उनमें हजारों पत्ते, पूरा संसार खड़ा हो जाता है। सामान्य संसारी की यात्रा भीतर के शून्य से बाहर के विराट की तरफ फैलाव है।

अध्यात्म की यात्रा सिकुड़ाव है- प्रतिक्रमण, रिटर्निंग टू दि सोर्स, प्रत्याहार, मूल उद्गम की ओर वापसी। जो पसारा हमने फैला लिया है उसको वापस सिकोड़ लें। विराट से पहले नौ पर आ जायें, नौ से तीन पर, तीन से फिर एक में छलांग लगा जायें। उसे एक कहना भी गलत है इसलिए तत्वज्ञानी उसे अद्वैत कहते हैं, वहाँ दो नहीं हैं या चाहें तो उसे शून्य कह लें या एक कह लें। बात कहने के ढंग अलग-अलग हैं, घटना एक ही है। तो समाधि में उस एक के भाव में डूबना होता है, जहाँ दो नहीं रह जाते; कुछ समय के

लिए अद्वैत घटित होता है। न मैं, न तू, भूल जाता है संसार; और जहाँ तू नहीं रहा, वहाँ मैं भी कैसे रहेगा? मैं तो हमेशा तू के सन्दर्भ में ही हो सकता है। आपके घर के बाहर, आपके बगीचे की जो बाउण्ड्री है, वही आपके पड़ोसी के बगीचे की बाउण्ड्री भी है। कोई भी सीमा हमेशा पड़ोसी से ही बनती है। यदि कोई भी आपके पड़ोस में हो ही न.... समझें कि तीसरा विश्व युद्ध हो जाए और संसार में सिर्फ आप ही हों, फिर आपके मकान की बाउण्ड्री कहाँ होगी? आपके मकान की बाउण्ड्री कहीं भी नहीं होगी, क्योंकि कोई बचा ही नहीं, केवल आप ही हैं। अब सीमा का कोई प्रयोजन नहीं रहा। कहीं भी फेन्स नहीं लगायेंगे। कोई जरूरत ही नहीं है। फेन्स तो हमेशा पड़ोसी के कारण होती है। जहाँ तक तू है, वहाँ तक मैं है। जब तू खो गया, संसार का विस्मरण हो गया तो स्वयं का जो होना है- अहंकार, वह भी मिट जाता है, खो जाता है। उस मिटने का नाम समाधि है।

फिर तीसरी अवस्था है सतोरी की। जब समाधि गहराई पकड़ लेती है और ऊर्जा का उत्थान होता है- तीव्र गति से ऊर्ध्वगमन- जैसे तूफान आया हो ऊर्जा का; समधि और ऊर्जा के तूफान का संयोग जहाँ होता है उस घटना का नाम सतोरी है। वह करीब-करीब बुद्धत्व की एक झलक है। ऐसा समझें हम एक ऊँची पहाड़ी पर चढ़ रहे हैं, गोल-गोल घुमावदार रास्ता है। शिखर पर पहुँचने के पहले शिखर के दर्शन होने लगेंगे। चलते-चलते घुमावदार रास्ते पर कोई बिन्दु ऐसा आयेगा जहाँ से पर्वत का सबसे ऊपर का हिस्सा- सर्वोच्च शिखर दिखाई पड़ रहा है। फिर रास्ते पर आगे चलेंगे.... हो सकता है वह दृश्य खो जाये, फिर न दिखाई पड़े। तो सतोरी, उस बुद्धत्व के शिखर की एक झलक है। सतोरी घटने का अर्थ है कि आप बहुत नजदीक पहुँच गये बुद्धत्व के, सम्बोधि के बहुत नजदीक पहुँच गये। लेकिन वह भी खो जाती है, अभी बहुत यात्रा बाकी है। घुमावदार रास्ता है, थोड़ा और चक्कर लगाना होगा। अंततः शिखर पर पहुँच जायेंगे, उस शिखर का नाम है सम्बोधि या बुद्धत्व या पतंजली की भाषा में कहना चाहें तो कह लें निर्विकल्प समाधि। अब अद्वैत की घटना- दुइ मिट जाने की अनुभूति सदा-सदा के लिये स्थायी हो गयी। अब वापस लौटना नहीं होता, उस शिखर पर अब निवास स्थान ही बन गया। उस घटना का नाम सम्बोधि है।

यूँ कहने में अलग-अलग लगती हैं बातें- साक्षी, समाधि, सतोरी, सम्बोधि- लेकिन एक ही यात्रा के चार पड़ाव समझ लो। पहला पड़ाव साक्षी, दूसरा समाधि की शुरुआत- सविकल्प समाधि, तीसरा सतोरी और चौथा सम्बोधि या बुद्धत्व या निर्विकल्प समाधि। एक ही यात्रा के पड़ाव हैं, बस एक-एक कदम आगे बढ़ते चलो... बढ़ते चलो। यूं भेद करके कहना हो तो चार शब्दों में कह लो और अगर अभेद की दृष्टि से देखना हो तो एक ही घटना है, उसी की शुरुआत है, मध्य है, अन्त है।

पहले प्रश्न वाली बात पुनः दोहरा दूं। हर व्यक्ति स्वयं के भीतर डूब सकता है, शुरुआत से चलकर मध्य, और मध्य से चलकर अन्त में सच्चिदानन्द को जान सकता

है। जितना दुख... उतना अहंकार प्रगाढ़ होता है। जितना आनंद... उतना अहं विलीन होता है, ब्रह्म शेष रह जाता है। बस यही छोटा-सा सन्देश है उस सच्चिदानन्द की अवस्था को जान लो जिसमें आत्मज्ञान घटता है, ब्रह्मज्ञान घटता है, निर्वाण होता है। इतना ही पता चलता है कि मैं नहीं हूँ। निर्वाण का अर्थ होता है- दीपक का बुझ जाना- 'मैं' का नहीं हो जाना।

प्रश्नः मैं जानना चाहता हूं कि क्या समाधि में बिना डूबे परमात्मा का सत्य जाना जा सकता है?

समाधि का अर्थ ही है परमत्मा को जानना। आप कह रहे हैं कि क्या बिना समाधि में डूबे परमात्मा को जाना जा सकता है? इसमें समाधि शब्द की जगह परमात्मा को रख दें और पूछें- क्या परमात्मा को जाने बगैर परमात्मा को जाना जा सकता है? तब आपको इस प्रश्न की अर्थहीनता समझ में आएगी- आप यही पूछ रहे हैं। समाधि का अर्थ है परमात्मा का ज्ञान, परमात्मा को जानना, परमात्मा में डूबना।

....तो आज के प्रश्न समाप्त हुए, आज के इस प्रश्नोत्तर सत्र को यहीं विराम देते हैं।

बहुत-बहुत धन्यवाद और शुभरात्रि। चलिए पाँच मिनट कीर्तन करते हैं। कीर्तन के साथ, नाचते हैं, गाते हैं, झूमते हैं, सभी लोग खड़े हो जाएँ, परमात्मा का नाम लें और फिर हम यहाँ से विदा होंगे।

अध्याय-6

ओशो समाधि शिविर हेतु आमंत्रण

प्रभु–मन्दिर का संगीत

आज के प्रवचन को परमगुरु ओशो की प्रथम कृति 'मिट्टी के दीए' की प्रथम कथा से आरंभ करता हूं–

एक कथा मैंने सुनी थी। हजारों वर्ष पूर्व परमात्मा के मंदिरों का एक नगर सागर में डूब गया था। उस सागर में डूबे उन मंदिरों की घंटियां आज भी बजती रहती हैं। शायद पानी के धक्के उन्हें बजा देते होंगे, या यहाँ-वहाँ भागती मछलियों से टकराकर वे बजती रहती होंगी। जो भी हो, घंटियां आज भी बजती हैं। और आज भी उनके मधुर संगीत को उस सागर के तट पर जाकर सुना जा सकता है।

मैं भी उस संगीत को सुनना चाहता था। मैं उस सागर की खोज में गया। बहुत वर्षों की भटकन के बाद अंततः उस सागर-तट पर पहुंच ही गया। किंतु यह क्या, वहाँ तो सागर का तुमुलनाद गूंज रहा था-लहरों के थपेड़े चट्टानों से टकराकर उस एकांत में अनंत गुना हो प्रतिध्वनित हो रहे थे। न तो वहाँ कोई संगीत था, न किन्हीं मंदिरों की बजती कोई घंटियां थीं। मैं तट पर कान लगाकर सुनता रहा, लेकिन वहाँ तो तट पर टूटती लहरों की ध्वनि के अतिरिक्त और कुछ भी न था।

फिर भी मैं रुका रहा। वस्तुतः लौटने का मार्ग ही मैं भूल गया था। अब तो वह अपरिचित निर्जन सागर-तट ही मेरी समाधि बनने को था।

फिर धीरे-धीरे सागर में डूबे मंदिरों की घंटियां सुनने का खयाल भी मुझे भूल गया। उस सागर के किनारे ही बस गया था।

एक रात्रि अचानक मैंने पाया कि डूबे मंदिरों की घंटियां बज रही हैं और उनका मधुर संगीत मेरे प्राणों को आंदोलित कर रहा है। मैं उस संगीत को सुनकर जाग गया और फिर तब से सो नहीं सका। अब तो भीतर कोई निरंतर ही जागा हुआ है। निद्रा सदा के लिए ही चली गई है। और जीवन आलोक से भर गया है, क्योंकि जहाँ निद्रा नहीं है, वहाँ अंधकार नहीं है।

और मैं आनंद में हूं...नहीं, नहीं...मैं आनंद ही हो गया हूं, क्योंकि जहाँ परमात्मा के मंदिर का संगीत है, वहाँ दुख कहाँ?

क्या तुम भी उस सागर के किनारे चलना चाहते हो? क्या तुम्हें भी परमात्मा के डूबे मंदिर का संगीत सुनना है? ...तो चलो। स्वयं के भीतर चलो। स्वयं का हृदय ही वह सागर है और उसकी गहराइयों में ही परमात्मा के डूबे हुए मंदिरों का नगर है।

लेकिन उसके मंदिरों का संगीत सुनने में केवल वे ही समर्थ होते हैं, जो सब भांति शांत और शून्य हों।

विचार और वासना का कोलाहल जहाँ है, वहाँ उसका संगीत कैसे सुनाई पड़ेगा? उसे

पाने की वासना तक भी उसे पाने में बाधा बन जाती है।

क्या तुम भी उस सागर के किनारे चलना चाहते हो?

क्या तुम्हें भी परमात्मा के डूबे मंदिर का संगीत सुनना है?

तो चलो। स्वयं के भीतर चलो...

–ओशो ('मिट्टी के दीए' से)

अध्याय-7
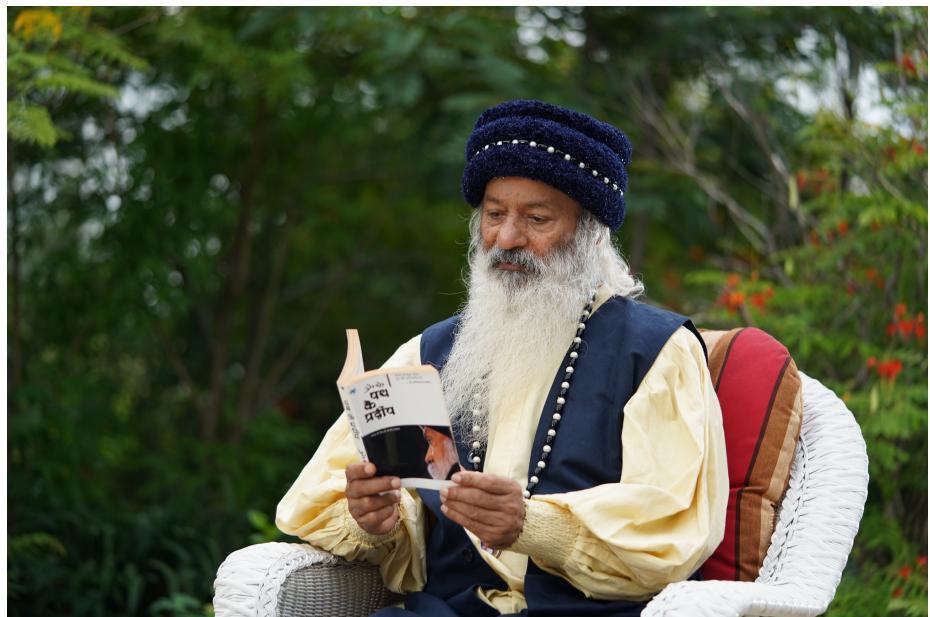
महावीर के चौदह गुणस्थान

महावीर पर प्रवचन देते हुए जिन-सूत्र भाग 2 प्रवचन 25 में ओशो ने आध्यात्मिक यात्रा के सूक्ष्म विभाजनों की बड़े विस्तार से चर्चा की है-

'आज के सूत्र महावीर की साधना-पद्धति में अत्यंत विशिष्ट हैं। साधक की यात्रा में जैसा सूक्ष्म पड़ावों का विभाजन महावीर ने किया है, वैसा किसी और ने कभी नहीं किया। राह का पूरा नक्शा, रास्ते पर पड़नेवाले पड़ाव, मील के किनारे लगे पत्थर, सभी की ठीक-ठीक सूचना दी है।

यह तभी संभव है, जब कोई गुजरा हो, पहुंचा हो। यह केवल विचार कर लेने से, दार्शनिक चिंतन से संभव नहीं है। और फिर हजारों वर्षों में और जो लोग सिद्धत्व को उपलब्ध हुए, उन सबने भी गवाही दी है कि महावीर का वक्तव्य साधक से लेकर सिद्ध की मंजिल तक अत्यंत सूक्ष्म रूप से सही है।

महावीर की भाषा में साधक चौदह गुणस्थानों से गुजरता है। एक-एक गुणस्थान को ठीक से समझना आवश्यक है। कहीं न कहीं तुम भी खड़े होओगे इसी रास्ते पर। अपनी जगह ठीक से पहचान लो, तो कैसी यात्रा करनी, कहाँ से यात्रा करनी, किस तरफ जाना-सुगम हो जाता है।

'मोहनीय कर्मों के उदय आदि (उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदि) से होनेवाले जिन परिणामों से युक्त जीवन पहचाने जाते हैं, उनको सर्वदर्शी जिन ने गुण या गुणस्थान की संज्ञा दी है। अर्थात सम्यकत्व आदि की अपेक्षा जीवों की अवस्थाएं, श्रेणियां, भूमिकाएं गुणस्थान कहलाती हैं।'

'मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत सम्यक दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशांतमोह, क्षीणमोह, संयोगिकेवलीजिन, अयोगिकेवलीजिन, ये क्रमशः चौदह जीव-समास या गुणस्थान हैं। सिद्ध जीव गुणस्थानातीत होते हैं।'

'काम, क्रोध, लोभ आदि वृत्तियों के साक्षी हो जाने के उपरांत ओशो योग-प्रज्ञा में प्रवेश मिलता है। इस त्रि-दिवसीय कार्यक्रम में परमात्मा के परम संगीत से परिचय कराया जाता है। जिसे संतों ने अनाहत नाद अथवा अनहद भी कहा है। गुरु नानक ने ज्ञान खंड तथा भगवान महावीर ने अपूर्वकरण नाम दिया है।' इस संबंध में ओशो कहते हैं-

'आठंवाः अपूर्वकरण। साधक की अष्टम भूमि, जिसमें प्रविष्ट होने पर जीवों के परिणाम प्रतिसमय अपूर्व-अपूर्व होते हैं। सातवें में व्यक्ति साधु बन जाता है। आठवें में घटनाएं घटनी शुरू होती हैं। सातवें तक साधना है, आठवें से अनुभव आने शुरू होते हैं। सातवें तक तैयारी है, आठवें से प्रसाद बरसना शुरू होता है।

सातवें तक प्रयास, आठवें से प्रसाद

प्रतिपल अपूर्व-अपूर्व अनुभव होते हैं, जैसे कभी न हुए थे। ऐसी सुगंधें आसपास डोलने लगती हैं जैसी कभी जानी न थीं। ऐसी मधुरिमा कंठ में घुलने लगती है जैसे कभी जानी न थी। ऐसे जीवन की पुलक अनुभव होती है, जिसकी कोई मृत्यु नहीं हो सकती। अमृत का स्वाद मिलता है।

सातवें तक तैयारी है। पात्र तैयार हुआ। आठवें में वर्षा शुरू होती है। कबीर कहते हैं, बादल गहन-गंभीर होकर घिर गए। अमृत बरस रहा है। दादू कहते हैं, हजार-हजार सूरज निकल आए ऐसी रोशनी है, कि अंधेरे को खोजो भी तो कहीं मिलता नहीं। मीरा कहती है, पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे।

ये आठवें की घटनाएं हैं-अपूर्वकरण। यहाँ अनूठे संगीत का जन्म होता है। यही घड़ी है जहाँ झेन फकीर कहते हैं, एक हाथ की ताली बजती है। अपूर्व-जो हो नहीं सकता ऐसा होता है। जो कभी हुआ नहीं, ऐसा होता है। जिसको कहा नहीं जा सकता ऐसा होता है। जिसको बताने का कोई उपाय नहीं। गूंगे का गुड़। गूंगे केरी सरकरा।

इस घड़ी में आदमी बड़े आनंद में लीन होने लगता है। और प्रतिपल नया-नया होता जाता है। द्वार के बाद द्वार खुलते चले जाते हैं, पर्दे के बाद पर्दे उठते चले जाते हैं। सात तक तुम साधो, आठ के बाद घटता है।

अपूर्वकरणः नाम भी महावीर ने ठीक दिया। पहले जैसा नहीं हुआ, कभी नहीं हुआ। और जब तुम्हें पहली दफा होता है तभी तुम्हें भरोसा भी आता है। कि महावीर हुए होंगे, कि बुद्ध हुए होंगे, कि कबीर ठीक कहते हैं। तुम गवाही बनते हो। आठवें पर तुम्हारी गवाही पैदा होती है। आठवें के पहले तुम जो सिर हिलाते हो वह बहुत सार्थक नहीं है। आठवें के पहले तुम कहते हो - हाँ, ठीक लगती है बात। बस, वह लगती ही है। तर्क से लगती होगी, संस्कार से लगती होगी। बार-बार सुनी है, पुनरुक्ति से लगती होगी। या तुम्हारे भीतर वासना है, आकांक्षा है कि ऐसा घटे, इसलिए तुम मान लेते होओगे कि हाँ, घटता है।

लेकिन आठवें पर पता चलता है। आठवें पर तुम दस्तखत कर सकते हो कि हाँ, महावीर हुए, कि बुद्ध हुए, कि जीसस हुए। कि इन्होंने जो भी कहा है, ठीक कहा है। क्योंकि अब तुम्हारे अनुभव में आ रही बात। अब अस्तित्वगत प्रमाण मिल रहा है।

अपूर्वकरण की स्थिति में ही कोई कह सकता है, आत्मा है।

अपूर्वकरण की स्थिति में ही कोई कह सकता है कि परमात्मा है। अपूर्वकरण की स्थिति में ही कोई कह सकता है, समाधि है। इसके पहले सब तर्कजाल है।

इसके बाद ही अनुभव के स्रोत खुलते हैं। तुम प्रतिक्षण मरते हो और प्रतिक्षण जन्मते हो। जैसे पुराना मर जाता है हर क्षण, और नए का आविर्भाव होता है। जैसे प्रतिपल पुराने की धूल उड़ जाती है और तुम्हारा दर्पण फिर नया हो जाता है।

जिसको बौद्धों ने क्षण-क्षण जीना कहा है, वह अपूर्वकरण की स्थिति है। जिसको कृष्णमूर्ति कहते हैं, मरो अतीत के प्रति, ताकि भविष्य का जन्म हो सके। छोड़ो अतीत को, पकड़ो मत, ताकि अपूर्व घट सके।

नए लोक में प्रवेश

यह अपूर्वकरण ध्यान का पहला स्वाद है। यहाँ से तुम दूसरे लोक में प्रविष्ट हुए। यहाँ से दूसरी दुनिया शुरू हुई। ऐसा समझो, अपूर्वकरण है, जैसा कि कोई यात्री नाव में बैठे नदी के इस किनारे से और नाव चले, तो मध्य तक तो पुराना किनारा ही दिखाई पड़ता रहता है-सातवें तक। नए किनारे का पता नहीं चलता। दूसरा किनारा अभी धुंध में छिपा है दूर। आठवें से, पुराना किनारा तो दिखाई पड़ना बंद होने लगता है, नया किनारा दिखाई पड़ना शुरू होता है। आठवें से पुराना तो धुंध में छिप जाता और नए का आविर्भाव होता है। आठवां, साधु के जीवन में आत्मा का जन्म है। आठवां, अंधेरे में प्रकाश का अवतरण है। आठवां, मरुस्थल में अमृत की वर्षा है-अपूर्वकरण।

और फिर ऐसा नहीं है कि वही-वही अनुभव रोज दोहरता है, प्रतिपल नया होता जाता है। जैसे-जैसे तुम दूसरे किनारे के करीब होने लगते और चीजें स्पष्ट होने लगती हैं, हर घड़ी गहन से गहन, सघन से सघन प्रतीति आनंद की होती चली जाती है।' (—ओशो)

सातवें गुण स्थान तक की ध्यान यात्रा मनुष्य का श्रम है। हमारा प्रयास है। लेकिन आठवें गुण स्थान अपूर्वकरण से परमात्मा का प्रसाद बरसना शुरू हो जाता है। उसकी कृपा बरसने लगती है और जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते हैं आठवें से चौदवें गुण स्थान की ओर, क्रमशः प्रभु कृपा बढ़ती चली जाती है और हमारा प्रयास न्यूनतर होता चला जाता है। फिर एक क्षण ऐसा आता है कि हमारा प्रयास, कर्ता भाव, अहंकार, शून्य हो जाता है और प्रभु कृपा पूर्ण हो जाती है; वही बुद्धत्व की, संबोधि की घटना है। समाधि के अनुभव अपूर्वकरण को समझाते हुए जिन-सूत्र, भाग २ के प्रथम प्रवचन में ओशो कहते हैंः-

अपूर्वश्रुत का रसातिरेक

'जैसे-जैसे मुनि अतिशय रस के अतिरेक से युक्त अपूर्वश्रुत का अवगाहन करता है...।'

और जिसे कभी नहीं सुना उसे सुनता है। सत्य ऐसा है जिसे कभी नहीं सुना, जिसे कभी नहीं देखा। ऐसा अनजान, ऐसा अपरिचित, ऐसा अज्ञेय है।

'उस अपूर्वश्रुत का अवगाहन करता है...।' जब चित्त थिर होता है, तो शांति भी बोलने लगती है। तो मौन भी मुखर हो जाता है। जब भीतर सब शून्य होता है, तो बाहर से शून्य भी तरंगित होकर भीतर प्रवेश करने लगता है। जब तुम ध्यान की आखिरी अवस्था में आते हो, तो अस्तित्व तुमसे बोलता है। परमात्मा तुमसे बोलता है। ध्यान की परम अवस्था में परमात्मा की तरफ से, अस्तित्व की तरफ से तुम्हारी तरफ संदेश आने शुरू हो जाते हैं।

इसको खयाल में लेना।

प्रार्थना में भक्त भगवान को पातियां भेजता है। ध्यान में, भगवान भक्त को। प्रार्थना में भक्त भगवान से बोलता है, कहता है कुछ; ध्यान में भगवान साधक से बोलता है, कहता है कुछ। महावीर का मार्ग, ध्यान का मार्ग है।

'जह जह सुयभोगाहइ।' और जैसे-जैसे उस परम सुख में डूबना होता है, जैसे-जैसे उस अतिशय रस में उतरना होता है...'अइसयरसपसरसंजुयमपुव्वं।' और जैसे-जैसे अपूर्वश्रुत का अवगाहन होता है। जैसे-जैसे सुनाई पड़ता है शून्य का स्वर, जिसको झेन फकीर कहते हैं 'साउंडलेस साउंड'-शून्य का स्वर, एक हाथ की ताली, कोई बोलता नहीं है, कोई बोलनेवाला नहीं है, अस्तित्व ही संदेश देता है। जब परमात्मा चारों तरफ से तरंगायित होने लगता है-अपूर्वश्रुत का अवगाहन-'वैसे-वैसे नितनूतन वैराग्ययुक्त श्रद्धा से आह्लादित होता है।'

'इसे लक्षण समझना साधु का। इसे लक्षण समझना संन्यासी का।'

ओशो द्वारा वसंत की पूर्वसूचना

'जिन खोजा तिन पाइयां' के एक प्रवचन में जो कि 'भारतः एक सनातन यात्रा' नामक किताब में भी संकलित हैं; ओशो कहते हैं कि आगामी २५ वर्ष बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें कुछ ऐसी ध्यान की विधियां खोज ली जाएगी, जिनके माध्यम से हजारों साधक-साधिकाएं बुद्धत्व को उपलब्ध हो सकेगे। शीघ्र ही ऐसे उपाय खोज लिए जाएंगे। इसी आधार पर उन्होंने दस हजार बुद्धों का स्वप्न देखा और ओशो जैसे प्रज्ञा पुरुष जब कोई स्वप्न देखते हैं तो वह खाली नहीं जाता, निश्चित रूप से पूरा होता है। शरीर छोड़ते समय उन्होंने कहा था 'आई लीव यू माइ ड्रीम' मैं अपना स्वप्न तुम्हें सौपता हूं। जो भी ओशो के शिष्य हैं, उनको प्यार करने वाले हैं, उन सब पर ओशो का यह स्वप्न पूरा

करने का दायित्व भी है। क्या आप भी इस दायित्व को महसूस करते हैं। क्या आप भी अपनी यह जिम्मेवारी समझते हैं कि उन दस हजार बुद्धों में एक आप भी हों यदि हाँ, तो आइए, ओशो समाधि-प्रज्ञा में भाग लेकर अपने दायित्व पूर्ति की दिशा में एक शुभारम्भ कीजिए। अपने भीतर छिपे परम सत्य को पहचानिए ताकि आपका जीवन भी सत चित्त आनंद से भर सके। आपकी जिंदगी भी एक कमल की भांति खिल सके। ओशो बारम्बार करते हैं, केवल जैन होकर संतुष्ट मत हो जाना, तुम्हें जिन बनना है महावीर की तरह। केवल बौद्ध धर्मावलंबी होकर तृप्त मत हो जाना। तुम्हें गौतम बुद्ध की तरह होना है। ईसाई बनकर संतुष्ट न हो जाना। तुम्हें ईसा मसीह ही होना है। हमें याद रखना चाहिए कि, हमें केवल ओशो के प्रेमी होकर ही तृप्त नहीं होना है बल्कि हमें ओशो भी बनना है। हमें केवल भगवान श्री रजनीश के प्रेमी होकर ही नहीं रह जाना है, हमें भगवान होना है। यह भगवत्ता क्या है? यह भगवान होना क्या है इसे भी खूब गौर से समझ लें।

भगवान यानी क्या?

एस धम्मों सनंतनो प्रवचनमाला में ओशो कहते हैं-

लोग कहते हैं भगवान को जानना है? लोग कहते हैं भगवान कहाँ है? लोग कहते हैं भगवान दिखला दो। दर्शन करा दो। लेकिन भगवान अगर तुम्हारे सामने भी खड़ा हो तो तुम दर्शन न कर पाओगे। तुम्हारी आंखें बंद हैं। भगवान तुम्हारे कानों के पास चिल्लाऐ, चीखे तो तुम सुन न पाओगे, तुम्हारे कान बंद हैं।

तुम्हारे भीतर इतना शोरगुल है तुम अपने शोरगुल को सुनोगे कि भगवान की आवाज सुनोगे। उसकी आवाज बड़ी धीमी है। भगवान चिल्लाता नहीं फुसफुसाता है। उसकी आवाज में आक्रमण नहीं है। उसकी आवाज़ एक धीमे स्वर की भांति है, शून्य स्वर की भांति है, संगीत की एक तरंग की भांति है। तुम जब तक शांत न हो जाओ। तुम उस तरंग को न पकड़ पाओगे।

जब तुम शांत हो जाओगे तभी तुम पकड़ पाओगे और शांत होते ही तुम हैरान होओगे कि हम कहाँ खोजते फिरते थे, उसने तो हमें चारों तरफ से घेरा हुआ है। उसके अतिरिक्त तो कोई और है ही नहीं। लेकिन यह तो बड़े दूर की बात हो गई कि वृक्ष में किसी दिन तुम्हें भगवान दिखाई पड़े। बुद्ध में नहीं दिखाई पड़ता, कृष्ण में नहीं दिखाई पड़ता, कबीर में नहीं दिखाई पड़ता, नानक में नहीं दिखाई पड़ता। यह तो बहुत दूर की बात हो गई कि पत्थर में दिखाई पड़े।

समाधि : भगवत्ता में डूबना

समाधि-प्रज्ञा कार्यक्रम में भगवत्ता से पहचान होती है। परमात्मा क्या है यह हम जानते हैं। फिर इसके बाद जो शेष यात्रा रह जाती है, वह है - उस भगवत्ता में डूबकर उससे एक हो जाना! उससे एक होने की विधि ही समाधि कहलाती है, सामयिक कहलाती है। इसे भी हमने कई सोपानों में बांटा है। सुरति-समाधि, निरति-समाधि, अमृत-समाधि, दिव्य-समाधि चैतन्य-समाधि आनंद-समाधि प्रेम-समाधि अद्वैत-समाधि कैवल्य-समाधि निर्वाण-समाधि एवं सहज-समाधि। दिव्यसमाधि तक के छः सोपानों में क्रमशः अतीन्द्रिय अनुभवों हम डूबते जाते हैं, डूबते जाते हैं, पिघलते जाते हैं, घुलते जाते हैं। और धीरे-धीरे उनके साथ एकाकार हो जाते है।

रामकृष्ण परमहंस एक कहानी कहा करते थे, कि एक नमक का पुतला सागर के किनारे आया और उसने सोचा कि सागर की गहराई नापूं, कूद गया वह सागर में, लेकिन जैसे-जैसे भीतर डूबता गया, घुलने लगा, सागर से ही तो बना था, सागर में ही पुनः विलीन होने लगा। एक क्षण आया जब वह नहीं रह गया, वह सागर स्वरूप ही हो गया। सागर की गहराई तो उसने जान ली, लेकिन सागर होकर ही जानी। सागर के साथ अनन्य भाव के साथ जानी। अलग रहकर नहीं। ठीक वैसे ही दिव्य समाधि तक हम क्रमशः भगवत्ता के अतीन्द्रिय अनुभूतियों में डूबते हैं और सातवें सोपान चैतन्य-समाधि में जाकर अनुभोक्ता को जानते हैं।

चैतन्य रूपी अनुभोक्ता में पहले आनंद का गुणधर्म छोटे से झरने के रूप में प्रगट होता है। फिर आनंद का अतिरेक प्रेम की बाढ़ बनकर बह उठता है। कबीर साहब कहते हैं- प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाय - इस प्रेम की बाढ़ में दुई का बांध टूट जाता है। अब द्वैतभाव मिटना आरंभ होता है, शनैः शनैः अद्वैत का अवतरण होने लगता है। 'मैं कौन हूं' का अस्तित्वगत उत्तर मिल जाता है।अगले सोपान पर- जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नाहीं- वाली कैवल्य की घटना घटती है। अहं ब्रह्मास्मि का उद्घोष होता है। साधक का पुतला प्रभु के सागर के साथ एकात्म हो जाता है। तत्पश्चात निर्वाण ज्ञान फलित होता है। उस संबंध में कुछ भी कहना कठिन है। अंततः निर्वाण के फूल से 'सहज समाधि भली' की सुगंध उठती है।

यह धर्म-यात्रा मौन में डूबकर होती है। कम से कम डेढ़ से लेकर तीन घंटे प्रतिदिन मौन में डूबकर समाधि की गहराइयों को पाना आवश्यक है। यदि कोई साधक पूरी ईमानदारी और त्वरा के साथ साल भर भी यह प्रयत्न करे तो बुद्धत्व उससे दूर नहीं। मौन की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए जिन सूत्र भाग २ के ११ वें प्रवचन में

ओशो समझाते हैं-

'जो वचन उच्चारण की प्रक्रिया का परित्याग कर के वीतराग-भाव से आत्मा का ध्यान करता, उसकी परम समाधि या सामयिक होती है।'

'यह बात ख्याल में रखने जैसी है।

'कम से कम दिन में दो-चार घंटे तुम मौन में बिताओ, नियम ही बना लो कि चौबीस घंटे में कम से कम चार घंटे तुम अपने लिए दे दोगे। बाकी दे दो बीस घंटे संसार के लिए चार घंटे अपने लिए बचा लो। अभी चार घंटे बहुत लगें तो एक घंटे से शुरू करो। लेकिन एक घंटा अपने लिए बचा लो। उस एक घंटे में फिर तुम बिलकुल चुप हो जाओ। पहले-पहले कठिन होगा। होंठ बंद कर लेना तो आसान है। भीतर की तरंगें बंद करना मुश्किल होगा। लेकिन साक्षी भाव से उन तरंगों को देखते रहो, देखते रहो, देखते रहो, धीरे-धीरे तुम पाओगे, विचारों की गति कम हो गई। धीरे-धीरे तुम पाओगे कभी-कभी दो विचार के बीच-बीच में अंतराल आने लगा। खाली जगह आने लगी। उसी खाली जगह से रस बहेगा। उसी खाली जगह से तुम्हें आत्मा की झलक पहली दफा मिलेगी। यह झलक ऐसे ही होगी जैसे वर्षा में बादल घिरे हों और कभी-कभी सूरज की किरणों की झलक मिल जाए क्षण भर को, फिर घटा छा जाए। फिर सूरज ढक जाए। लेकिन एक बार झलक आने लगे, एक दफा वहाँ भीतर की मुरली का स्वर तुम्हें सुनाई पड़ने लगे, तो जीवन में जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, वह घट गया।

साज शृंगार?
छोड़ दौड़ो सब साज-सिंगार,
रास की मुरली रही पुकार।गई सहसा किस रस से भींग
वकुल वन में कोकिल की तान?
चांदनी में उमड़ी सब ओर,
कहाँ के मद की मधुर ऊान?
गिरा चाहती भूमि पर इंदुशिथिलवसना रजनी के संग;
सिहरते पग सकता न संभालकुसुम-कलियों पर स्वयं अनंग!
ठगी-सी रूकी नयन के पासलिए अंजन उंगली सुकुमार,
अचानक लगे नाचने मर्म,रास की मुरली उठी पुकार।
साज-शृंगार?
छोड़ दौड़ो सब साज-सिंगार,

रास की मुरली रही पुकार।खोल बांहें आलिंगन हेतु
खड़ा संगम पर प्राणाधार;तुम्हें कंकन-कुंकम का मोह,
और यह मुरली रही पुकार।
सनातन महानंद में आजबांसुरी-कंकन एकाकार।
बहा जा रहा अचेतन विश्व,
रास की मुरली रही पुकार।साज-शृंगार?
छोड़ दौड़ो सब साज-सिंगार,
रास की मुरली रही पुकार।

मौन में सुनो कृष्ण की बांसुरी

एक बार भी तुम्हें भीतर की किरणों का बोध हो जाए-सुन पड़ी मुरली। रास का निमंत्रण मिल गया। उस परम प्यारे की सुध आ गई। वह तुम्हारे भीतर ही बैठा है। वह तुम्हें सदा से ही पुकारता रहा है। लेकिन तुम इतने व्यस्त हो दूसरों के साथ भाषा में, बोलने में, झगड़ने में, मित्रता-शत्रुता बनाने में, तुम इतने व्यस्त हो बाहर कि तुम्हारे भीतर अंतर्तम से उठी मुरली की पुकार तुम्हें सुनायी नहीं पड़ती।

महावीर ने कहा मौन हो जाओ; तो तुम्हें अपने संगीत का पहली दफा अनुभव हो। चुप हो जाओ, उस चुप्पी में ही, उस अनाहत का नाद शुरू होगा। वह ध्वनिहीन ध्वनि, वह स्वरहीन स्वर तुम्हारे भीतर से उठने लगेगा। तुम्हारी अतल गहराईयों से, तुम्हारी चेतना की परम गहराईयों से तुम्हारे पास तक पहुंचने लगेगा। लेकिन मौन उसकी अनिवार्य शर्त है और मौन का अर्थ है ओंठ से मौन, कंठ से मौन, भीतर विचार से मौन-धीरे-धीरे सब तलों पर, सब पर्तों पर मौन। तब तुम मुनि हुए।

मुनि का कोई संबंध बाह्य-आचरण से नहीं है। मुनि का संबंध इस अंतसदशा से है, मौन की दशा से है। और जो मौन को उपलब्ध हुआ, वही बोलने का हकदार है। जो अभी मौन को ही नहीं जाना, वह अभी बाहर के ही कचरे को भीतर लेता है और बाहर फेंक देता है। उसका बोलना तो वमन जैसा है। जो मौन को उपलब्ध हुआ, उसके पास कुछ देने को है। उसके पास कुछ भरा है, जो बहना चाहता है, बंटना चाहता है। उसके पास कुछ आनंद की संपदा है, जो वह तुम्हारी झोली में डाल दे सकता है।

शून्य से जन्मे शब्द

महावीर बारह वर्ष मौन रहे। जीसस जब भी बोलते, तो बोलने के बाद कुछ दिनों के

लिए पहाड़ पर चले जाते। वहाँ चुप हो जाते। जब भी कोई महत्वपूर्ण बात बोलते, तब तत्क्षण वे पहाड़ पर चले जाते। अपने मित्र, संग-साथियों को भी छोड़ देते, कहते, अभी कोई मत आना। अभी मुझे जाने दो अकेले में। उस अकेले में जीसस क्या करते? मुहम्मद पर जब पहली दफा कुरान की आयत-पहली आयत उतरी, तो वे चालीस दिन से मौन थे। उसी मौन में पहली दफे कुरान उतरा।

जो भी मौन में उतरा है, वही शास्त्र है। मौन में जो नहीं उतरा, वह शास्त्र नहीं। किताब होगी। जो मौन में कहा गया है, मौन से कहा गया है, वही उपदेश है। जो शब्द मौन में डूबे हुए नहीं आये, मौन में पगे हुए नहीं आये, वे सब शब्द रुग्ण हैं। स्वस्थ तो वे ही शब्द हैं जो मौन में पगे हुए आते हैं। और अगर तुम ध्यान से सुनोगे, तो तुम तत्क्षण पहचान लोगे कि यह शब्द मौन में पगा आया है, या नहीं आया है? तुम्हारा हृदय तत्क्षण गवाही दे सकेगा। क्योंकि जितना शून्य लेकर शब्द आता है, अगर तुम शांतिपूर्वक सुनो, तो शब्द चाहे तुम भूल भी जाओ, शून्य सदा के लिए तुम्हारा हो जाता है। शब्द चाहे तुम्हारे स्मृति में रहे या न रहे, शून्य तुम्हारे प्राणों पर फैल जाता है। तुम्हें नया कर जाता है, ताजा कर जाता है।

ध्यान में दर्शन है। मौन में दर्शन है। चुप्पी में साक्षात्कार है।'

सम्यक श्रवण का जादू

प्यारे मित्रो, समाधि के ज्ञान के उपरांत फिर कुछ करने को नहीं रह जाता। फिर सचमुच में ध्यान अक्रिया हो जाता है फिर तो चुप हो जाना है, मौन में डूब जाना है और केवल सुनना है, श्रवण करना है। सभी संतों ने श्रवण पर बहुत जोर दिया है। गुरु नानक पर जो प्रवचनमाला है 'एक ओंकार सतनाम' उसके पांचवे प्रवचन में पूरे डेढ़ घंटे ओशो ने सिर्फ श्रवण की महत्ता दर्शाई है। धम्मपद पर बोलते हुए एक सूत्र की प्यारी व्याख्या ओशो ने की है हज़ारों शास्त्रों को सुनने की बजाय उस एक शब्द को सुनो, जिसे सुनने से शान्ति मिलती है। और वह शब्द कहीं बाहर नहीं, वह हमारे भीतर ही मौजूद है। हमें सिर्फ चुप होने की और सुनने की कला आनी चाहिये। 'समाधि प्रज्ञा' के पश्चात् अन्य सात सोपानों में श्रवण कला ही सिखाई जाती है।

जिन-सूत्र के भाग 2 के प्रथम प्रवचन में ओशो महावीर के सूत्र को समझाते हुए कहते हैं-

'फिर हम महावीर के तीर्थ की चर्चा करें। ऐसे सत्पुरुषों को फिर-फिर सोचना जरूरी है। सोच-सोचकर सोचना जरूरी है। बार-बार उनका स्वाद हमारे प्राणों में उतरे। हमें भी

वैसी प्यास जगे। जिस प्यास ने उन्हें परमात्मा बनाया, वही प्यास हमें भी परमात्मा बनाये। क्योंकि अंततः प्यास ही ले जाती है।

जब प्यास इतनी सघन होती है कि सारा प्राण प्यास में रूपांतरित हो जाता है, तो परमात्मा दूर नहीं। परमात्मा पाने के लिए कुछ और चाहिए नहीं। ऐसी परम प्यास चाहिए कि उसमें सब कुछ डूब जाए, तल्लीन हो जाए।

तो फिर महावीर की चर्चा करें। और महावीर की फिर चर्चा करने में यह बात सबसे पहले समझ लेनी जरूरी है कि महावीर ने श्रवण पर बड़ा जोर दिया है। महावीर कहते हैं, सोया है आदमी, तो कैसे जागेगा? कोई पुकारे उसे, कोई हिलाये-डुलाये, कोई जगाये। कोई उसे खबर दे कि जागरण का भी कोई लोक है। सोया आदमी अपने से कैसे जागेगा। सोया तो जागने का भी सपना देखने लगता है। सोया तो सपने में भी सोचने लगता है, जाग गये! भेद कैसे करेगा सोया हुआ आदमी कि जो मैं देख रहा हूं, वह स्वप्न है या सत्य? कोई जागा उसे जगाये। कोई जागा उसे हिलाये। इसलिए महावीर कहते हैं, सुनकर ही सत्य की यात्रा शुरू होती है।

महावीर का ज़ोर : श्रवण पर

महावीर ने कहा है, मेरे चार तीर्थ हैं। श्रावक का, श्राविका का; साधु का, साध्वी का। लेकिन पहले उन्होंने कहा, श्रावक का, श्राविका का।

श्रावक का अर्थ है, जो सुनकर पहुंच जाए। साधु का अर्थ है, जो सुनकर न पहुंच सके, सुनना जिसे काफी न पड़े जिसे कुछ और करना पड़े।

साधुओं ने हालत उल्टी बना दी है। साधु कहते हैं कि साधु श्रावक से ऊपर है। ऊपर होता तो महावीर उसकी गणना पहले करते। तो उसे प्रथम रखते।

महावीर कहते हैं, ऐसे हैं कुछ धन्यभागी, जो केवल सुनकर पहुंच जाते हैं। जिन्हें कुछ और करना नहीं पड़ता। करना तो उन्हें पड़ता है जो सुनकर समझ नहीं पाते। तो करने वाला सुनने से दोयम है, नंबर दो है।

इसे समझना।

बुद्ध कहते थे, ऐसे घोड़े हैं कि जिनको मारो तो ही चलते हैं। फिर ऐसे घोड़े हैं कि कोड़े की फटकार सुनकर चलते हैं, मारने की जरूरत नहीं पड़ती। ऐसे भी घोड़े हैं कि कोड़े की छाया देखकर चलते हैं। फटकारने की भी जरूरत नहीं पड़ती।

श्रावक को सुनना काफी है। उतना ही जगा देता है। तुमने किसी को पुकारा, कोई जग जाता है। पर किसी को हिलाना पड़ता है। किसी के मुंह पर पानी फेंकना पड़ता है। तब

भी वह करवट लेकर सो जाता है। श्रावक है वह, जिसने सुनी पुकार और जाग गया। साधु है वह, जो करवट लेकर सो गया। जिसको हिलाओ, शोरगुल मचाओ, आंखों पर पानी फेंको। सम्यक श्रवण, सुधी व्यक्ति के लिए पर्याप्त है। इशारा बहुत है बुद्धिमान को।

पहला सूत्र है आज का-

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं।
उभयं पि जाणए सोच्चा, जं छेयं तं समायरे।।

'सुनकर ही कल्याण का-आत्महित का मार्ग जाना जा सकता है।' सुनकर ही!

श्रवण कुंजी है सत्य के द्वार की

'महावीर यह भी नहीं कहते कि पाप को छोड़ो। कहने की जरूरत नहीं। ठीक से सुनने वाले को पाप पकड़ता ही नहीं। महावीर यह भी नहीं कहते कि सत्य का अनुसरण करो। यह बात ही व्यर्थ होगी। जिसने ठीक से सुना है वो सत्य के अनुसरण में लग जाता है, अनुसंधान में लग जाता है। इसका यह अर्थ हुआ सम्यक श्रवण कुंजी है, सत्य के द्वार की। जिसके हाथ में सम्यक श्रवण है, वो पहुंच जाएगा उसे कोई रोक न सकेगा। इसे हम थोड़े वैज्ञानिक अर्थों में समझें। आदमी के पास आंख है देखने को, कान है सुनने को। आंख से जब तुम देखते हो तो एक ही दिशा में देख सकते हो। आंख बहुआयामी नहीं है। मल्टी-डायमेंशनल नहीं है। एक तरफ देखो तो सब दिशाएं बंद हो जाती है। आंख एकांगी है। आंख एकांत है। इसलिए महावीर का जोर कान पर ज्यादा है, आंख की बजाय। कान बहुआयामी है। आंख बंद करके सुनो तो चारों तरफ की आवाजें सुनाई पड़ती हैं। आंख समग्र को नहीं ले पाती। कान समग्र को भीतर ले लेता है। यह पहली बात ख्याल में ले लेने की है। आंख से जब भी तुम देखते हो एक दिशा में, एक रेखा में, उतनी रेखा को छोड़कर शेष सब बन्द हो जाता है। आंख है, जैसे टॉर्च से एक दिशा में प्रकाश की धारा पड़ती है, लेकिन शेष सब अंधकारमय हो जाता है। महावीर कहते हैं यह एकांगी होगा। यह एकांत होगा।

एकांगी आंख एवम् बहुआयामी कान

तुम एक पहलू को जान लोगे लेकिन शेष पहलुओं से अनजान रह जाओगे। यह ऐसा ही होगा जैसा उन पांच अंधों की कथा है, जो हाथी को देखने गए थे। सबने हाथी के अंग छुए लेकिन सभी प्रतीति एकांगी थी। जिसने पैर छुए उसने सोचा कि हाथी खम्बे की भांति है। जिसने कान छुए उसने सोचा कि हाथी पंखे की भांति है। अलग-अलग वे सभी सत्य

थे, लेकिन सभी अधूरे सत्य थे। और महावीर कहते हैं, अधूरा सत्य असत्य से भी बदतर है। क्योंकि असत्य को तो पहचानने में कठिनाई नहीं होती, वो तो निष्प्राण है। वो तो लाश की तरह है। उसको तो तुम समझ ही जाओगे कि यह मुर्दा है। आधा सत्य खतरनाक है क्योंकि आधे सत्य में थोड़ी सी प्राण की झलक है। सांस अभी चलती है। मरीज अभी मरा नहीं, लगता है जिंदा है। अभी शरीर थोड़ा गर्म है, ठंडा नहीं हो गया, खून अभी बहता है, लगता है जिंदा है, आधा सत्य असत्य से बदतर है। इसलिए महावीर का सारा संघर्ष आधे-सत्यों के खिलाफ है, असत्य के खिलाफ नहीं, असत्य तो सुन के ही समझ में आ जाता है। लेकिन आधे सत्य बड़े भरमाते हैं। महावीर ने एक नए जीवन-दर्शन को जन्म दिया उसे कहा-स्यातवाद। उसे कहा-अनेकांतवाद, उसे कहा कि-मैं सारे एकांगी सत्यों को इकट्ठा कर लेना चाहता हूं। यह पांचों अंधों ने जो कहा है। हाथी के संबंध में यह सभी सच है और सत्य इन सभी का इकट्ठा जोड़ है। समन्वय है।

आंखें मनुष्य के हाथ में हैं, कान परमात्मा के हाथ में!

कान की खूबी है कि कान आंख से ज्यादा समग्र है। जब तुम सुनते हो तो चारों दिशाओं से सुनते हो। कान ऐसे है जैसे दिया जले और सब तरफ प्रकाश पड़े। आंख ऐसे है जैसे टॉर्च एक दिशा में, एकांगी।

महावीर कहते हैं कि दर्शन-शास्त्र एकांगी है। श्रवण-शास्त्र बहुअंगी है। इसलिए महावीर ने एक बड़ी क्रांतिकारी प्रज्ञा दी है। उन्होंने कहा कि सुनो, अगर ध्यान में जाना है तो सुनकर जल्दी जा सकोगे, बजाय देखकर।

इसलिए समस्त ध्यानियों को आंख बंद कर लेनी चाहिए। समस्त ध्यान की प्रक्रियाएं कहती है, आंख बंद कर लो। यह भी थोड़ा समझने जैसा है कि परमात्मा ने आंख को ऐसा बनाया है कि चाहो तो खोल लो, चाहो तो बंद कर लो। कान को ऐसा नहीं बनाया। कान खुला है। बन्द करने का उपाय नहीं है। आंख तुम्हारे हाथ में है। कान अब भी परमात्मा के हाथ में है।'

OSHO
साधना पथ
ओशो
OSHO BOOK
living in awareness
Sadhana Path

अध्याय-8

संतों की मूल देशना

बुद्ध, महावीर, कृष्ण और ओशो की जो मूल शिक्षा है, वही कबीर, नानक, दादू, मीरा, सहजो, दया, दरिया, रज्जब आदि आज तक जितने भी संत हुए हैं, सबकी एक ही शिक्षा है कि हम कैसे परमात्मा को जाने और परमात्मा ही हो जाएं। कैसे हम डूब जाएं शून्य के उस संगीत में जिसे लाओत्से महासंगीत 'दि ग्रेट म्यूज़िक' कहता है। उपनिषद् के ऋषि जिसे 'प्रणव' पुकारते हैं। महावीर जिसे कहते है 'अपूर्वश्रुत', हैराक्लाइटस कहता है 'दि हिडन हारमनी', मध्य युग के संतों ने उसे 'शब्द', 'नाम', 'सतनाम', 'अनहद' पुकारा है। बाइबल में जिसे 'लोगोस' कहा गया है, उस परमात्मा को हम कैसे जाने? उस परम संपदा के खजाने को किस कुंजी से खोलें?

गोरखनाथ की शिक्षाः शब्द में डूबो

'मरो हे जोगी मरो' के चौथे प्रवचन में किसी ने पूछा है-

गोरखनाथ की मूल शिक्षा क्या है?

ओशो कहते हैं - बड़ी छोटी, संक्षिप्त हैः

हंसिबा खेलिबा रहिबा रंग। काम क्रोध न करिबा संग। हंसिबा खेलिबा गाइबा गीत, दृढ़ करि राखी अपना चीत।

यही मेरी शिक्षा भी है। हंसिबा खेलिबा रहिबा रंग। रंग से रहो! मस्ती में, मौज में, आनंद में। इतना परमात्मा ने दिया है... नाचो, गुनगुनाओ, गाओ। धन्यवाद का गीत उठना चाहिए तुम्हारे हृदय से, वही प्रार्थना है। हंसिबा, खेलिबा, रहिबा रंग। हंसो। अगर न हंस सको तो समझना तुम कभी धार्मिक न हो सकोगे।

ओशो आगे समझाते हुए परम रहस्य खोलते हैं-

सबदहिं ताला सबदहिं कुंजी, सबदहिं सबद जगाया।

सबदहिं सबद सुपरचा हुआ सबदहिं सबद समाया।

उसी महासंगीत से सब पैदा हुआ है। परमात्मा परमध्वनि है-ओंकार, एक ओंकार सतनाम। ओम् का नाद है परमात्मा।

सबदहिं ताला सबदहिं कुंजी। इसलिए उस परम शब्द में ही ताला है, उसी परम शब्द में कुंजी भी है। संगीत का ही ताला है, संगीत की ही कुंजी है। छंद का ही ताला है, छंद की ही कुंजी है। तुम्हारे भीतर मौन संगीत उठ आये, मौन गीत जग जाए-शब्द शून्य, शब्द रिक्त-शुद्ध संगीत जग जाए, बस कुंजी मिल गयी!

सबदहिं सबद जगाया! और यही तो गुरु के पास घटता है। गुरु अपनी वीणा छेड़

देता है, अपना शब्द छेड़ देता है, तुम्हारे भीतर सोये हुए शब्द में झंकार पड़ती है। तुम्हारे भीतर भी शब्द में प्रतिध्वनि उठने लगती है।

सबदहिं सबद जगाया। सबदहिं सबद सुपरचा हुआ। और गुरु के संगीत में डूबकर, गुरु के शब्द में डूबकर, गुरु की मूल ध्वनि में डूबकर अपना भी परिचय हुआ।

सबदहिं सबद सुपरचा हुआ, सबदहिं सबद समाया। और फिर संगीत, जीवन का सारा संगीत उस महासंगीत में लीन हो जाता है।

समाधि का ज्ञान गोपनीय क्यों?

सुनने की कला आ जाए तो धीरे-धीरे हम परमात्मा में विलीन हो जाते हैं। सुनते-सुनते उसके साथ एक हो जाते हैं और अखंड ब्रह्म को जान लेते हैं। लेकिन प्यारे मित्रों, यह रहस्य एक गुप्त रहस्य है जो हर किसी को नहीं बताया जा सकता। जो साधना से गुजरने को तैयार है, कुछ शर्तों के साथ, केवल उन्हीं को यह गोपनीय रहस्य प्रगट किया जा सकता है। इसलिए 'ओशो समाधि प्रज्ञा' में प्रवेश के पहले 'योग पंच व्रत' की समझपूर्वक शपथ ली जाती है। अहिंसा, अव्यसन, शाकाहार, अप्रमाद एवं अप्रसार का संकल्प बोधपूर्वक लेने के बाद ही गुप्तज्ञान पाने की पात्रता पैदा होती है।

अस्तित्व के साथ एकता का ज्ञान

चौदहवें प्रवचन में अनाहत मंत्र समझाने के पश्चात् निर्वाण उपनिषद् के 15वें प्रवचन में ओशो कहते हैं -

वैसे व्यक्ति की फिर अखंड ब्रह्म के साथ सत्ता एक हो जाती है। फिर जन्म का कोई उपाय न रहा, क्योंकि जन्म लेगा कहाँ? जाएगा कहाँ? आवागमन की कोई सुविधा न रही। फिर तो प्रतिष्ठा उसमें हो गई, जो सरल है, आकाश की भांति जो फैला है सब ओर। उसके साथ एक होना हो गया।

यही क्षण परम अनुभूति और परम आनंद का क्षण है, जब हमें जन्मने की जरूरत नहीं रह जाती, क्योंकि फिर मरने का कोई कारण नहीं रह जाता। और जब हमें शरीर ग्रहण नहीं करने पड़ते, तब हमें शरीर से पैदा होने वाले कष्ट भी नहीं झेलने पड़ते। और जब इंद्रियां हमें नहीं मिलतीं, तब इंद्रियों से जो भ्रांतियां पैदा होती हैं, वे भ्रांतियां भी पैदा नहीं होतीं। तब हम शुद्ध चैतन्य में, शुद्ध सत्य में, शुद्ध अस्तित्व के साथ एक

हो जाते हैं। इस एकता का जो ज्ञान है, इस एकता का जो दिशा-निर्देश है, इस परम ऐक्य की, जो इंगित व्यवस्था है, ऋषि कहता है, यही निर्वाण दर्शन है।

एक बहुत अद्भुत बात इस सूत्र में कही है अंत में - जिसका शिष्य या पुत्र के अतिरिक्त अन्य किसी को उपदेश नहीं करना, ऐसा यह रहस्य है।

यह बहुत अजीब लगेगा। इतनी अद्भुत बातों के बाद, इतने परम ज्योतिर्मय की ओर इशारे करने के बाद एक बात ऋषि कहता है कि यह ज्ञान ऐसा है कि इसे अपने पुत्र या अपने शिष्य के अतिरिक्त और किसी से मत कहना। केवल शिष्य ही गुह्य रहस्य का अधिकारी है।

केवल शिष्यों के लिए

उपनिषद् का अर्थ होता है- दि सीक्रेट डॉक्ट्रिन। उपनिषद् का अर्थ होता है, गुह्य है, कि हर किसी से नहीं कहा जाता। बहुत इंटिमेसी चाहिए, बड़ा आंतरिक संबंध चाहिए। रहस्य ऐसा गुह्य है कि जहाँ तर्क और वितर्क और विवाद चलता हो, वहाँ नहीं कहा जा सकता है। जहाँ प्रेम की अंतर्धारा बहती हो, वहीं कहा जा सकता है। जहाँ संवाद संभव हो, कम्यूनिकेशन जहाँ संभव हो, जहाँ हृदय हृदय से बोल सके, हार्ट टु हार्ट, वहीं कहना। ऋषि ने यह सूचना दी है।

बेटे या शिष्य को कहने का भी कारण है। असल में बेटे से मतलब है, जो इतना अपना हो कि अपनी ही मांस-मज्जा मालूम पड़े। जरूरी नहीं है कि वह आपके शरीर से पैदा ही हुआ हो। यह जरूरी नहीं है। यह जरूर जरूरी है कि वह आपको ऐसा लगे कि अगर वह मर जाए, तो आपका कोई हिस्सा मर जाएगा; कि अगर वह खो जाए, तो आपका कोई अंग खो जाएगा, कि वह डूब जाए, नष्ट हो जाए, तो आपके हृदय की धड़कनें कुछ नष्ट हो जाएंगी; आप फिर कभी उतने पूरे न होंगे, जितने उसके होने से थे। जिसके साथ ऐसी आत्मीयता मालूम हो, जो इतना आत्मज मालूम पड़े, उससे कहना, क्योंकि यह रहस्य गुह्य है। या उससे कहना जो शिष्य हो। शिष्य का अर्थ होता है- वन हू इज़ रेडी टु लर्न, जो सीखने को तैयार है।

बहुत कम लोग दुनिया में सीखने को तैयार होते हैं, मुश्किल से। सिखाने की उत्सुकता बहुत आसान है, सीखने की तैयारी बहुत कठिन है। क्योंकि सीखने के लिए झुकना पड़ता है।

इस शिष्य शब्द से मुझे खयाल आया। हमारे मुल्क में पांच सौ वर्ष पहले नानक के

शब्दों से एक धर्म का जन्म हुआ, जिसको हम कहते हैं सिक्ख। लेकिन सिक्ख केवल शिष्य का पंजाबी रूपांतरण है। शिष्य का पंजाबी रूप है सिक्ख-जो सीखने को तैयार है। इतना ही उसका मतलब है। सिक्ख कोई पंथ नहीं, कोई मजहब नहीं। जो भी सीखने को तैयार है, वही शिष्य है।

निर्वाण का अंतिम सूत्र

ऋषि कहता है- सीखने की तैयारी न हो अगर, तो मत कहना। क्योंकि ये बातें ऐसी हैं, कि सीखने को जो तैयार न हो, उससे कहो, तो उसके कानों में भी प्रवेश नहीं होगा और खतरा यह है कि वह इनके गलत अर्थ निकाल लेगा। क्योंकि यह रहस्य गुह्य है, यह सीक्रेट है। यह ऐसी बात नहीं है बोलचाल की, कि कह दी। यह कहना सोच-समझकर।

निश्चित ही, हम पूरा शास्त्र देख गए हैं, सोच-समझकर कहने जैसा है।... जो बातें कही हैं, वे निश्चित ऐसी हैं कि ऋषि को यह वक्तव्य पीछे दे ही देना चाहिए कि उससे ही कहना, जो इतना निकट हो कि मिसअंडरस्टैंड न कर जाए, गलत न समझ जाए। उससे ही कहना, जो सीखने को इतना तैयार हो कि अपनी तरफ से जोड़े न। जो कहा जाए, वही समझे। जो चरणों में बैठकर झुक सके। जो सिर्फ प्रश्न ही न कर रहा हो, जो केवल जवाब ही न चाहता हो; जो समाधान की तलाश में निकला हो, जो समाधि पाना चाहता हो, उससे कहना।

निर्वाण उपनिषद् समाप्त।

ऋषि कहता है- बस यह आखिरी बात कहनी थी कि जब किसी से कहो, सोच-समझकर कहना। इतना ही मुझे कहना है, ऋषि कहता है। और निर्वाण उपनिषद् समाप्त हो जाता है।

निर्वाण उपनिषद् तो समाप्त हो जाता है, लेकिन निर्वाण, उपनिषद् के समाप्त होने से नहीं मिल जाता है। निर्वाण उपनिषद् जहाँ समाप्त होता है, वहीं से निर्वाण की यात्रा शुरू होती है। उपनिषद् समाप्त हो गया।

ओशो की आशा

इस आशा के साथ अपनी बात पूरी करता हूं कि आप निर्वाण की यात्रा पर चलेंगे, बढ़ेंगे। और यह भरोसा रखकर, मैंने ये बातें कही हैं कि आप सुनने को, समझने को

तैयार होकर आए थे। अगर कोई शिष्य के भाव से न आया हो, तो उसके कारण मुझे ऋषि से क्षमा मांगनी पड़ेगी, क्योंकि फिर ऋषि के इशारे के विपरीत बात हो गई।

अगर किसी ने मन में विवाद लेकर इन बातों को सुना और समझा हो, तो उससे मैं प्रार्थना करूंगा, वह भूल जाए कि मैंने उससे कुछ भी कहा है।

मैंने जैसे कहा है और जो कहा है, उसमें अगर रत्तीभर भी अपनी तरफ से जोड़ने का खयाल आए, तो स्मरण रखना कि वह अन्याय होगा–मेरे साथ ही नहीं, जिसने निर्वाण उपनिषद् कहा है, उस ऋषि के साथ भी।

यही मानकर मैं चला हूं कि जो यहाँ इकट्ठे हुए हैं, वे आत्मीय हैं, ऐंड कम्युनिकेशन इज़ पॉसिबल, और संवाद हो सकता है।

इसलिए सिर्फ चर्चा नहीं रखी, साथ में आपके ध्यान के गहन प्रयोग रखे हैं। क्योंकि मैं मानता हूं कि चर्चा में वे लोग भी उत्सुक हो जाते हैं, जो शब्दों को विलास समझते हैं। चर्चा में वे लोग भी उत्सुक हो जाते हैं, जो शब्दों को मनोरंजन समझते हैं, लेकिन ध्यान में वे लोग उत्सुक नहीं होते। और दिन में तीन बार अथक श्रम करना पड़े, ध्यान के लिए, तो जो चर्चा में उत्सुक थे, वे भाग गए होंगे। भाग जाएंगे, इसलिए ध्यान को अनिवार्य रूप से पीछे जोड़कर रखा था। और मैं, आप जब मुझे सुनते हैं, तब आपकी फिक्र नहीं कर रहा हूं; जब आप ध्यान करते हैं, तब आपकी फिक्र करता हूं।

आपके ध्यान करने की चेष्टा ने मुझे भरोसा दिलाया है कि जिनसे मैंने बात कही है, वे कहने योग्य थे।

निर्वाण उपनिषद् समाप्त!

निर्वाण की यात्रा प्रारंभ!!'

ओशोधारा समाधि शिविर क्या हैं?

ओशो ने जगत को बहुआयामी अनूठी जीवन दृष्टि दी- समाज के तल पर वैचारिक क्रान्ति और व्यक्ति के तल पर आत्मिक शांति। उनकी देशना का केंद्रीय बिंदु अध्यात्म है। उन्होंने तीव्रगामी परिणाम लाने वाली अद्‌भुत ध्यान विधियों की रचना की। प्राचीन साधना पद्धतियों पर भी प्रकाश डालकर उनमें पुनः प्राण फूंके। ओशो ने अंतर्यात्रा का पूरा विज्ञान उजागर किया, संसार में प्रेमपूर्वक जीने की कला, परम जीवन को जानने की प्यास, ध्यान एवं भक्ति के विभिन्न मार्गों की समझ, समाधि की

गहराइयों में प्रवेश की कुंजियां, चैतन्य के शिखर, बुद्धत्व तक पहुंचना तथा फिर बुद्धत्व के पार भी जाना...।

सद्‌गुरु से उपहार में मिले इन मोतियों की माला पिरोने से शृंखलाबद्ध कार्यक्रमों की रचना हो गई है। कोई भी साधक क्रमशः इन समाधि-सोपानों पर एक-एक कदम चलते हुए जीवन के रहस्यों में बड़ी सुगमता से उतर सकता है। अंतर्यात्रा के इस प्यारे सफर में चौदह चरण हैं। प्रत्येक चरण की अवधि छः दिन है। इस प्रकार मात्र 84 दिनों में उतनी दूरी तय हो जाती है, जितनी 84 वर्षों की लंबी जिन्दगी में भी संभव नहीं हो पाती थी। अस्तित्व की असीम कृपा बरस रही है, ओशो की बगिया में बसन्त आ गया है।

फूल ही फूल खिल उठे मेरे पैमाने में
आप क्या आए बहार आ गई मैखाने में।
दुआ बहार की मांगी तो इतने फूल खिले
कहीं जगह न रही मेरे आशियाने में।

'**ध्यान समाधि**' नामक छः दिन के इस प्रथम कार्यक्रम में तीन-तीन दिन के निम्नलिखित दो खंड हैं-

पहले खंड 'आनंद प्रज्ञा' में शरीर शुद्धि, भाव शुद्धि एवं चित्त शक्तियों के रूपान्तरण का सम्मिलित प्रयोग होता है- आधुनिक 'फोरम स्टाइल' में चलने वाले इस शिविर में व्यक्ति की मानसिक ग्रंथियों का विसर्जन होता है, तथा जीवन के विभिन्न पहलुओं के प्रति सम्यक् समझ पैदा होती है। दुख, तनाव, अशांति, क्रोध, कलह की आदतों से छुटकारा मिलता है। नए साहस और संकल्प के साथ आनंदमय व प्रेममय जीवन जीने की कला सीखी जाती है। ओशो कहते हैं- 'जीवन ही है प्रभु'। कोई नए मित्र चाहें, तो केवल तीन दिन के शिविर में भी भाग ले सकते हैं और अपने जीवन को सुखमय बना सकते हैं।

दूसरे खंड 'समाधि प्रज्ञा' में योग के सात आयामों से साक्षी तक की यात्रा होती है, षट्‌रिपुओं (काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष) से मुक्ति के व्यावहारिक सूत्रों से परिचित होते हैं। चेतना निर्मल होती है, ध्यान यानी साक्षीभाव की सही समझ पैदा होती है।

ओशो कहते हैं- 'शरीर का केन्द्र है मन, मन का केंद्र है आत्मा, आत्मा का केन्द्र है परमात्मा।' आनंद प्रज्ञा में मन को समझते हैं, फिर साक्षी आत्मा को जानते हैं तथा

अंततः परमात्मा के ओंकार रूप से परिचित हो समाधि में प्रवेश की कला सीखते हैं। सरहपा, तिलोपा जिसे 'सहज योग' पुकारते हैं एवं संत कबीर जिसे 'सहज समाधि भली' कहते हैं उसमें छलांग लग जाती है। वह सौभाग्य की घड़ी आती है, जिसकी तरफ संत पलटू साहब का इशारा है-

पलटू शुभ दिन शुभ घड़ी, याद पड़े जब नाम,
लगन महूरत झूठ सब, और बिगाड़े काम।
ऐसी ही घड़ी में मीरा नाच उठी होगी-
'पायो जी मैंने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सद्गुरु, किरपा कर अपनायो।'

'सुरति समाधि' नामक दूसरे तल के कार्यक्रम में समाधि की गहराइयों में डूबना आरंभ हो जाता है। 'अंतर्वीणा' पर बज रहे 'मौन संगीत' की श्रवण कला सीखी जाती है। संतों ने इसे ही सुरति या सुमिरन कहा है। जगजीवन पुकारते हैं 'नाम सुमरि मन बावरे' और गुरु नानक कहते हैं- 'एक ओंकार सतनाम'। 'अरी मैं तो नाम के रंग छकी' वाली घटना घटती है।

'निरति समाधि' नामक तीसरे तल के कार्यक्रम में 'दीपक बारा नाम का, महल भया उजियार' का रहस्य खुलता है। 'दीया तले अंधेरा' मिटता है; 'बिन बाती बिन तेल', 'पथ के प्रदीप' जगमगा उठते हैं। गोरखनाथ के वचन 'शबद भया उजियाला' को समझाते हुए ओशो कहते हैं- 'वह जो परम अनुभव है, वहाँ द्रष्टा और श्रोता का मिलन है। वहाँ आंख सुनती है, कान देखते हैं। अपूर्व तिलिस्म घटता है। वहाँ प्रकाश है लेकिन मुर्दा नहीं, नाचता हुआ है। प्रकाश के हाथों में बांसुरी है- प्रकाश बज रहा है। शब्द और ज्योतिर्मय! संगीत और आभा से परिपूर्ण, प्रदीप्त!!'

'अमृत समाधि' नामक चौथे तल में मृत्यु के पार परम जीवन का अनुभव होता है। उपनिषद् के ऋषि प्रार्थना करते हैं- 'मृत्योर्मा अमृतं गमय।' गोरखनाथ आह्वान करते हैं- 'मरो हे जोगी मरो।' ओशो कहते हैं- 'मैं मृत्यु सिखाता हूं।' मलूकदास बताते हैं- 'रामदुवारे जो मरे' उसे फिर बारम्बार नहीं मरना पड़ता। जीते-जी मरने की कला 'दि आर्ट ऑफ डाइंग' सीखकर, मृण्मय देह के पार अजन्मा-अमृत स्वरूप का ज्ञान होता है। 'ओम् मणि पद्मे हुम्।'

'ऊर्जा समाधि' नामक पांचवें शिविर में ब्रह्म ऊर्जा का अनुभव, कुंडलिनी ऊर्जा का ऊर्ध्वगमन, आध्यात्मिक शक्ति से चिकित्सा, सम्मोहन योग द्वारा विकारों से मुक्ति

सीखी जाती है। हरि की ऊर्जा बरस रही है, भीगे तन-मन सारा- इस अनुभूति में डूबना होता है।

'**दिव्य समाधि**' नामक छठवें शिविर में ओशो के इस वचन की महिमा प्रगट होती है- 'यह मंदिर नहीं, मधुशाला है। अंगूरों से बनी नहीं, यहाँ आत्मा में ढली शराब पिलाई जाती है'। इस कार्यक्रम में परमात्मा के रस को पीते हैं। 'पीवत रामरस लगी खुमारी', 'मगन भया रसि लागा', 'रसो वै सः,' 'संतो मगन भया मन मेरा', 'आठ पहर यूं झूमते', 'पिव-पिव लागी प्यास', 'राम नाम रस पीजै','कस्तूरी कुंडल बसै'- विभिन्न संतों की इन अनोखी घोषणाओं के राज खुलते हैं।

'**चैतन्य समाधि**' नामक सातवें शिविर में ओशो की देशना के प्रमुख बिंदु 'चैतन्य' की साधना होती है। 'चेति सकै तो चेत'। जानने वाले को जानो, देखने वाले को देखो। इसके पहले के शिविरों में जो दिव्य अनुभूतियां हो रही थीं, अब खोजो कि वे किसे हो रही थीं? साधना-सूत्र प्रवचनमाला में मैबिल कालिन्स को समझाते हुए ओशो कहते हैं- बाहर है मूर्त जगत, भीतर है अमूर्त लोक, दोनों के पार तुम हो। मूर्त व अमूर्त, दोनों का अतिक्रमण करो।

'**आनंद समाधि**' नामक आठवें शिविर में 'सच्चिदानंद' का भेद खुलता है। संत गुलाल की तरह साधक कह उठता है- 'झरत दसहुं दिस मोती।' 'संभोग से समाधि की ओर' में ओशो समझाते हैं कि विषयानंद और ब्रह्मानंद सहोदर हैं। 'तंत्रः दि सुप्रीम अंडरस्टैंडिंग' तथा 'दि बुक ऑफ दि सीक्रेट्स' (विज्ञान भैरव तंत्र) के रहस्य लोक में उतरकर विराट के साथ परमभोग में डूबना घटित होता है।

नौवें शिविर '**प्रेम समाधि**' में 'ढाई आखर प्रेम का' सीखते हैं, 'प्रेम के पंख' फैलाते हैं। माना कि 'सहज आसिकी नाहीं', 'प्रेम पंथ ऐसो कठिन' और 'पंथ प्रेम को अटपटो', लेकिन जो अपना अहंकार गंवाने को राजी हैं उन दीवानों के लिए ही तो 'प्रेम है द्वार प्रभु का'। शेख फरीद की बात 'अकथ कहानी प्रेम की' जब हृदयंगम होती है, दूलनदास की तरह तब साधक गा उठता है-'प्रेम रंग रस ओढ़ चदरिया' और 'प्रेम की झील में अनुग्रह के फूल' खिलने लगते हैं।

दसवें शिविर '**अद्वैत समाधि**' में महर्षि रमण के अनुसार 'मैं कौन हूं' पूछते-पूछते अंततः 'हेरत-हेरत हे सखी रह्या कबीर हेराई, बुंद समानी समुंद में सो कत हेरी जाई' वाली घटना घटती है। 'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' की सागरीय अनुभूति (ओशनिक एक्सपीरिएंस) होती है, और 'ओशो' संबोधन का रहस्य खुलता है। 'हरि ओम् तत्सत्'

और 'तत्वमसि' का भेद खुलता है।

ग्यारहवें तल वाली **'कैवल्य समाधि'** और बारहवें तल वाली **'निर्वाण समाधि'** में क्रमशः 'कैवल्य उपनिषद्' एवं 'निर्वाण उपनिषद्' के ऋषियों के महावाक्यों पर से परदे उठ जाते हैं। संत कबीर की साखी पलट जाती है- 'हेरत-हेरत हे सखी रह्या कबीर हेराई, समुंद समानी बुंद में सो कत हेरी जाई'। वर्णनातीत अनुभूति घटती है। उसे अनुभूति कहना भी न्यायोचित नहीं है। अनुभोक्ता ही खो जाता है। ज्ञाता, ज्ञेय व ज्ञान सब समाप्त..... महाशून्य रह जाता है!

तेरहवें तल पर अंततः **'सहज समाधि'** आती है, कबीर साहब का अनूठा वचन 'साधो सहज समाधि भली' घटित होता है।

'परमहंस समाधि' नामक चौदहवें तल के कार्यक्रम में सुमिरन की गहराइयों में डुबकी लगती है। 'जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ। संसार में रहकर भी संसार से पार। परम मंगल का अनुभव होता है।

ओशो कहते हैं- 'मेरे हिसाब में 21वीं सदी इस पृथ्वी पर सबसे बड़ी धार्मिक सदी होगी। 21वीं सदी इतने बुद्धों, इतने जिनों, इतने सिद्धों को पैदा करेगी, जितने मनुष्य जाति के पूरे इतिहास में कभी नहीं हुये। तुम्हें पता है इस समय जो वैज्ञानिक जिंदा हैं और पूरी मनुष्य जाति के इतिहास में जो वैज्ञानिक हुए हैं उनका हिसाब लगाओगे, तो तुम चकित हो जाओगे कि 90 प्रतिशत वैज्ञानिक तो आज मौजूद हैं और पूरे मनुष्य जाति के इतिहास में दस हजार वर्षों में केवल दस प्रतिशत वैज्ञानिक हुए हैं। क्या हो गया? विज्ञान का विस्फोट हुआ है। ठीक ऐसे ही धर्म के विस्फोट की घड़ी करीब आ गयी है। उसकी पूर्व तैयारी का मैं आयोजन कर रहा हूं। ये जो बुद्ध क्षेत्र है, ये जो बुद्ध संघ है, ये उस महातैयारी के लिए, ये उस परम अवसर को निमंत्रित करने के लिए, आह्वान देने के लिये है' ।(हंसा तो मोती चुगै-6)

कार्यक्रम स्थल—

ओशो के उपरोक्त आह्वान पर आधारित आत्म-जागरण अभियान के ये कार्यक्रम ओशो-समाधि-विद्यापीठ के सद्गुरु त्रिविर (ओशो सिद्धार्थ, ओशो प्रिया व ओशो शैलेन्द्र) एवं आचार्य संघ सदस्यों द्वारा चार ओशोधारा-धामों एवं अनेक ओशोधारा ध्यान केन्द्रों में संचालित हो रहे हैं। देश-विदेश में लगभग अस्सी छः दिवसीय समाधि शिविर प्रतिवर्ष होते हैं, जिनमें करीब चार हजार साधक-साधिकाएं परमात्मा के

विभिन्न आयामों में डूबकर अपना जीवन धन्य करते हैं।

आश्चर्यजनक किंतु सत्य

किसी भी आध्यात्मिक धारा में इतने कम समय में ब्रह्म का ज्ञान हासिल नहीं होता। मानव जाति के इतिहास में यह पहला सामूहिक प्रयोग है, जहाँ साधक-साधिकाओं की चेतना को जेट-स्पीड विधियों से इतने ऊंचे शिखर तक उठने में सहायता मिल रही है। पहले बरसों की कठिन तपस्या से जंगल-गुफाओं में रहकर जो ज्ञान मिलता था, अब वह छः दिन की सुख-सुविधापूर्ण सरल सी साधना द्वारा संभव है। इसी कारण ओशोधारा दिन-दूनी रात-चौगुनी फैलती जा रही है।

चुनौतीपूर्ण निमंत्रण

प्यारे मित्रों, जिन्हें उत्सुकता हो निर्वाण की इस यात्रा पर चलने की, मोक्ष की यात्रा, परम सत्य की यात्रा, परमात्मा की यात्रा, कोई भी नाम दें - उन्हें एक प्रेमपूर्ण निमंत्रण है। एक चुनौती भी है-जीवन के परम लक्ष्य, बुद्धत्व, तक पहुंचने की। आपको बस इतना विश्वास दिलाना चाहता हूं, कि मंजिल बहुत दूर नहीं है और कठिन भी नहीं है। सच पूछो तो मंजिल हमारे भीतर ही है, सिर्फ भीतर मुड़ने की कला सीखनी है। ओशोधारा समाधि शिविरों में वही कला सिखाई जाती है। जिन मित्रों को रुचि हो, गहन प्यास हो, आएं। उनका स्वागत है। हम आपकी प्रतीक्षा में हैं।

अध्याय-9

ओशो प्रेमियों के संदेह निवारण

1. आप ध्यान विधियों का अवमूल्यन कर रहे हैं?
2. संन्यास नामों को परिवर्तित करने का औचित्य?
3. यहाँ सुरति साधना पर इतना जोर क्यों देते हैं?
4. संन्यासियों की संख्या तेजी से बढ़ने का रहस्य?

प्रश्नः देहरादून के एक संन्यासी मित्र ने आपके द्वारा संचालित आत्म-जागरण कार्यक्रमों का विरोध करते हुए एक पत्र प्रसारित किया है। उनका कहना है कि समाधि और संबोधि के कार्यक्रम चलाकर आप ओशो की ध्यान विधियों का अवमूल्यन कर रहे हैं। आप उन्हें तथा अन्य संन्यासी मित्रों को इस संबंध में क्या कहना चाहेंगे?

ओशो शैलेन्द्र : ध्यान सीढ़ी है - समाधि तक जाने के लिए। ऐसे व्यक्ति को क्या कहेंगे, जो सीढ़ी को ही पकड़कर रुक जाए, और मंजिल तक न पहुंचे। सच पूछो तो सीढ़ी पर रुक जाने वाले व्यक्ति ने सीढ़ी का अवमूल्यन किया है। वह बेचारा सीढ़ी का मूल्य ही नहीं समझ पाया। कोई नाव में बैठे और उस पार पहुंचने की बात ही भूल जाए, तो ऐसे व्यक्ति को क्या कहेंगे? नाव में बैठना जरूरी है। उस पार पहुंच कर उतरना भी जरूरी है। उस पार पहुंचने वाले ने ही नाव की कीमत को पहचाना। वह व्यक्ति ही हृदयपूर्वक नाव को धन्यवाद दे सकेगा।

समाधि कार्यक्रम चलाकर हम ओशो की 'ध्यान विधियों' का ठीक-ठीक सदुपयोग कर रहे हैं। और यह स्थापित कर रहे हैं कि ये विधियां इतनी प्रभावशाली हैं कि अल्पकाल में ही समाधि तक पहुंचा देती हैं। यह अवमूल्यन हुआ अथवा उनकी महिमा की स्थापना हुई?

'कहै कबीर दीवाना' के तीसरे प्रवचन में ओशो कहते हैं, 'ध्यान यानी खेत की तैयारी, समाधि यानी फसल। ये जो ध्यान के सारे प्रयोग हैं, अगर ठीक से समझो, तो इनको ध्यान कहना भी ठीक नहीं है। इनको तो ध्यान की पूर्व तैयारी कहना चाहिए।'

'का सोवै दिन रैन' के आठवें प्रवचन में चित्त की आठ अवस्थाओं के संबंध में समझाते हुए ओशो कहते हैं, 'सातवीं अवस्था है ध्यान और आठवीं है समाधि। सातवीं तक विधियों का उपयोग जरूरी है।' लगभग इन्हीं शब्दों में पतंजलि योग सूत्र पर बोलते हुए ओशो ने विस्तारपूर्वक ध्यान और समाधि के भेद को समझाया है। पहले विधि साधनी है, फिर त्यागनी भी है।

'होनी होए सो होए' के पांचवे प्रवचन में ओशो बताते हैं, 'ओंकार का नाद सुनना ही असली ध्यान है। कबीर जिसे 'शब्द' कह रहे हैं, उसी को मैं ध्यान कहता हूं।' समाधि की अवस्था में ओंकार सुनाई पड़ता है। 'मरो हे जोगी मरो' के ग्यारहवें प्रवचन में ओशो कहते हैं कि गुरु की 99 प्रतिशत मेहनत लोगों को जगाने में जाती है सिर्फ 1 प्रतिशत शब्द सुनाने में लग पाती है, क्योंकि जब तक शिष्य सोया है, तब तक उसे परमात्मा की परम ध्वनि कैसे सुनाई जा सकती है? इसलिए समस्त ध्यान की विधियां जगाने के उपाय हैं, ताकि वह महासंगीत सुना जा सके। असली उद्देश्य उस परम संगीत को सुनना है। इसी किताब के चौथे प्रवचन में ओशो कहते हैं, जो गोरखनाथ की मूल शिक्षा है, वही मेरी

भी मूल शिक्षा है–उस परम शब्द को सुनो।

'सबै सयानै एक मत' के आठवें प्रवचन में ओशो स्पष्ट कहते हैं 'ध्यान एवं प्रेम दो साधन हैं, समाधि साध्य है।'

जिन मित्रों ने साधनों को ही साध्य समझ लिया है, वे ओशो की असली बात ही चूक गए। ओशो ने जब कभी सक्रिय ध्यान अथवा अन्य विधियों की चर्चा की है, उन्होंने प्रायः कहा है कि तीन महीने इस विधि को करो। जिन्दगी भर इन विधियों को करने के लिए तो उन्होंने कभी प्रस्तावित नहीं किया। देहरादून के जिन मित्र ने उपरोक्त वक्तव्य दिया है मैं उनसे निवेदन करूंगा कि कृपया एक बार पुनः चिंतन करें। ध्यान की समस्त विधियां समाधि के लक्ष्य तक पहुंचाने के लिए ही हैं। यदि कोई मंजिल तक नहीं पहुंच पा रहा है, तो वह भली भांति समझ ले कि मार्ग के संबंध में उसे कुछ भ्रांति हो गई है। मंजिल पर पहुंचना ही मार्ग का मूल्य स्थापित करता है, यद्यपि मंजिल पर पहुंचकर मार्ग छूट जाता है। स्वस्थ होने के बाद औषधि को त्याग दिया जाता है। इससे औषधि की गरिमा सिद्ध होती है, तथा वैद्य के प्रति अहोभाव व्यक्त होता है।

अहंकार व्याधि है; गुरु वैद्य है। ध्यान औषधि है। समाधि स्वास्थ्य है। ओशो ने समाधि का संपूर्ण विज्ञान दिया है। केवल ध्यान विधियों तक ही ओशो को सीमित कर देना ओशो का अवमूल्यन है।

प्रश्नः पूना के एक प्रतिनिधि शिविर संचालक का आरोप है कि आप ओशो द्वारा दिये संन्यास नामों को भी परिवर्तित कर देते हैं। क्या इस संबंध में अपनी दृष्टि बताने की कृपा करेंगे?

ओशो शैलेन्द्र : पहली बात, हमने केवल उन मित्रों के नाम बदले हैं जिन्होंने हमसे नाम परिवर्तित करने के लिए आग्रह किया था।

दूसरी बात, जब ओशो स्वयं नाम देते थे तब एक अलग ही गरिमा थी, नाम बहुत अर्थपूर्ण एवं साधक के मार्ग की तरफ संकेत करने वाले होते थे। ओशो के विदा होने के उपरान्त जो नामकरण किये जा रहे हैं, वे उस व्यक्ति विशेष को देखकर नहीं, और कभी-कभी तो अंग्रेजी में स्पेलिंग मिस्टेक (हिज्ज की गलतियों) के कारण अर्थहीन भी हो जाते हैं। कई लोगों को ऐसे नाम मिले हैं, जिनका उच्चारण तक करना कठिन है। वे किस भाषा के शब्द हैं, भगवान ही जाने! ऐसी स्थिति में मित्रों के निवेदन किये जाने पर ही हमने उनको नया सारगर्भित नाम दिया है।

तीसरी बात 'ओशो' ने नाम इसलिए बदले ताकि लोगों का नाम से तादात्म्य टूटे। 'मैं नाम रूप नहीं हूं' यह पता चल सके। नए नाम से तादात्म्य करने के लिए तो नया नाम नहीं दिया गया था। अतः जिस शिविर संचालक महोदय ने यह आरोप लगाया है उन्हें

थोड़ा विचारना चाहिए कि नाम परिवर्तन के कारण उनके अहंकार को लग रही चोट उनके स्वयं के तादात्म्य के कारण है।

खुद ओशो ने अपना नाम कितनी बार परिवर्तित किया! कुछ याद है कि नहीं? ओशो अपने शिष्यों को देखकर हैरान होते होंगे कि ये लोग नामों से इतने मोहग्रस्त हो गए हैं। आश्चर्य, कि 'ओशो' शब्द पर किसका कानूनी अधिकार है, इस पर कोर्ट-कचहरी में झगड़े-फसाद चल रहे हैं! 'प्रेम ही परमात्मा है' की शिक्षा देने वाले के शिष्य नामों पर लड़ रहे हैं। खूब मजा है!!

प्रश्नः ओशोधारा में सुरति साधना पर बहुत जोर दिया जा रहा है। सुरति क्या है? ओशो एवं अन्य संतों ने इस संबंध में क्या देशना दी है?

ओशो शैलेन्द्र : इस प्रश्न का उत्तर मैं नहीं दूंगा। मा ओशो प्रिया से निवेदन करूंगा कि आपकी शंका का समाधान करें।

मा ओशो प्रिया- सुनो, कबीर ने क्या गाया है-

मेरी सुरति सुहागन जाग री!
क्या तू सोवै मोह नींद में, उठ के भजन विच लाग री।
अनहद शबद सुनो चित्त दे के, उठत मधुर धुन राग री।।
चरण शीश धर विनती करियो, पायेगी अटल सुहाग री।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जगत पीठ दे भाग री।।

यह सुरति क्या है, जिसके बिना कोई सुहागन नहीं होता, विरह और वैधव्य में जीता है? परमात्मा की विस्मृति वियोग है, स्मृति का नाम योग है। कैसे विस्मरण टूटे? कैसे स्मरण आए? कबीर कहते हैं - अनहद शब्द सुनो चित्त दे के- वहाँ एक मीठा संगीत बज रहा है। संसार की तरफ पीठ करो, भीतर की ओर मुंह करो, तो अटल सुहाग मिलेगा, परम प्यारा प्रीतम मिलेगा। 'झरत दसहुं दिस मोती' में ओशो अनहद की तरफ इशारा करते हैं-'वह जो भीतर सुना जाता है, उससे प्रीति लगाओ। उसे सुनो। उसे सुनने की विधि ध्यान है।' (प्रवचन-21)

'अंतर्वीणा' पर बज रहे 'मौन संगीत' को सुनने की विधि ध्यान है, जिसे संतों ने सुरति पुकारा है। यह सुरति शब्द कहाँ से जन्मा? इसकी उत्पत्ति की कहानी बड़ी मीठी है।

पश्चिम में 'फिलॉसफी' पैदा हुई- चिंतन-मनन की प्रणाली। पूरब में सत्य को सोचने-विचारने का विषय नहीं, बल्कि जानने योग्य तत्व समझा गया, इसलिए परमात्मा को देखने-सुनने की साधना पद्धति जन्मी। मनुष्य की दो सर्वाधिक प्रमुख इंद्रियां आंख एवं कान हैं। भारतीय धर्म ग्रंथ 'श्रुति' या 'दर्शन शास्त्र' कहलाते हैं। ऋषियों ने परम सत्य

को देखा, सुना। इन दो चर्म चक्षुओं से नहीं, अंतरनेत्र से देखा। इन बहिर-कर्णों से नहीं, भीतरी कान से सुना। बाहरी कानों से सत्य का श्रवण नहीं होता-'कानों सुनी सो झूठ सब।' और आंखों से जो दिखाई पड़ता है वह माया है, स्वप्नवत संसार है, सत्य नहीं। अंतर-इंद्रियों को विकसित करना होगा, धर्म की साधना से गुजरना होगा। भीतरी दृष्टि की क्षमता 'निरति' तथा आंतरिक श्रवण शक्ति 'सुरति' कहलाती है।

गौतम बुद्ध की आष्टांगिक साधना का महत्त्वपूर्ण बिंदु है- सम्यक् स्मृति। इसके महत्त्व का अनुमान इसी बात से लगा लीजिए कि ओशो के अंतिम प्रवचन का अंतिम शब्द है- सम्मासति। गोरखनाथ, कबीर, नानक, दादूदयाल आदि मध्ययुगीन संतों की वाणी में यही शब्द और मिठास लेकर प्रगट हुआ- सुरति। स्मृति घिसते-घिसते सुरति बन गई। जैसे उसमें मिश्री घुल गई। सुरति में दोनों अर्थ समा गए-श्रुति भी, स्मृति भी। परमात्मा के महासंगीत की सूक्ष्म ध्वनि को सुनना भी, और चलते-फिरते, उठते-बैठते उसे स्मरण भी रखना। जब समाधि में डूबे तो श्रवण, जब संसार के काम-काज में लगे तो सुमिरन। दोनों कलाएं सीखनी होंगी क्योंकि चौबीस घंटे तो कोई साधक समाधि में डूबा नहीं रह सकता। बुद्ध कहते हैं- सम्यक् समाधि। समाधि में भी अति मत कर देना। संत का अर्थ होता है - 'संतुलित'। संसार और समाधि में भी संतुलन हो तो ओशो की दृष्टि में वही व्यक्तित्व 'ज़ोरबा दि बुद्धा' है।

सुरति की साधना शुरू होती है मंत्रजाप से। कोई भी नाम जप आरंभ में काम दे सकता है, जैसे राम, राम, राम, राम अथवा ओम्, ओम्, ओम्। जोर से बोलना। फिर मुंह बंद कर लेना, सिर्फ कंठ और जीभ से भीतर ही भीतर ध्वनि को गुंजाना। तीसरे चरण में केवल मन ही मन जपना, कोई स्थूल ध्वनि न पैदा हो। फिर तो मन भी चुप हो जाए, केवल मौन में सुनना। सम्यक् श्रवण घट जाने के पश्चात् तब उसकी स्मृति को संभालना। धीरे-धीरे यह स्मृति का भाव हृदय की गहराइयों में प्रविष्ट हो जाएगा। 'जस पनिहार धरे सिर गागर।' निरंतर याद बनी रहेगी। खाते-पीते, सोते-जागते, अहर्निश प्रभु का नाम-स्मरण चलता ही रहेगा। वह हरि नाम ही असली सोना है। संत भीखा कहते हैं -

'लेहिं बिसाहिं कांच को सौदा, सोना नाम गंवाई।
गुरु-परताप साध की संगति, करहु न काहे भाई।।'

ओशो इस पद की व्याख्या करते हैं- 'शब्दों में उलझे हो, कांच को पकड़कर बैठ गए! कांच का सौदा कर लिया है-शब्द तो कांच जैसे हैं। सोना नाम गंवाई!! और हरिनाम, प्रभु का स्मरण-जो सोना है-उसमें डुबकी नहीं मार रहे हो। अमृत मौजूद है और तुम विष पी रहे हो। शास्त्रों में ही खोये रहोगे? किसी जीवंत सद्गुरु के चरणों को न पकड़ोगे? गुरु-परताप साध की संगति! अगर कुछ करना हो तो कुछ ऐसा करो कि किसी गुरु की

आभा में मंडित हो जाओ। किसी गुरु के संगीत में डूब जाओ, लयबद्ध हो जाओ। जहाँ गुरु के पास साधुओं की जमात इकट्ठी हुई हो, जहाँ परमात्मा के प्रेमी और दीवाने नाच रहे हों, मस्त हो रहे हों, आनंदमग्न हो रहे हों-वहाँ तुम भी पहुंच जाओ। शायद उनकी मग्नता तुम्हारे रोओं को भी कंपा दे, शायद उनका नाच तुम्हारे पैरों को भी नचा दे। और कोई उपाय नहीं है, एक ही उपाय है-गुरु-परताप साध की संगति!'

ओशो की कृपा से अब पुनः साध की संगति उपलब्ध है। हरिनाम की सुरति साधना में संलग्न साधक-साधिकाएं मस्ती में सराबोर हो रहे हैं। ओशोधारा नानकधाम, गंगोत्रीधाम, आनंदधाम एवं सहजानंदधाम में गुरु का प्रताप झर रहा है- 'झरत दसहुं दिस मोती', 'उत्सव आमार जाति, आनंद आमार गोत्र' घटित हो रहा है। बरस रहा है ओशो का प्रसाद-'बिन घन परत फुहार।' आओ और भीगो। शब्दों, सिद्धांतों और शास्त्रों में मत उलझे रह जाना; कांच का सौदा न करना। वरना सोना नाम गंवा दोगे। नानक कहते हैं, सिर्फ वह नाम ही सत्य है-'एक ओंकार सतनाम।' उसे जानकर ही कोई जगजीवन सुरति में जीना सिखाता है-'नाम सुमिर मन बावरे।' अध्यात्म के इस सूत्र से परिचित हुए बिना कोई संत नहीं कह सकता-'अरी, मैं तो नाम के रंग छकी।' पलटू का वचन है-'दीपक बारा नाम का, महल भया उजियारा' नाम का दीपक जलाए बिना अंधेरा नहीं मिटता। 'दिया तले अंधेरा' बना ही रहता है, 'पथ के प्रदीप' प्रज्वलित नहीं होते।

'लगन महूरत झूठ सब, और बिगाड़ें काम।
पलटू शुभ दिन शुभ घड़ी, याद पड़े जब नाम।।'

राम नाम को जाने बिना सारी पूजा-प्रार्थनाएं व्यर्थ ही नहीं, नुकसानप्रद भी हैं। रहीम का पद है - 'राम नाम जान्यो नहीं, भई पूजा में हानि।' तभी तो ओशो ने अपनी किताबों के शीर्षक चयन करने में राम नाम को इतनी महत्ता दी-'नहिं राम बिन ठांव।' नाम की साधना ही सुरति को जगाने का उपाय है। इसलिए तो अंतिम प्रवचन का अंतिम शब्द ओशो ने चुना-'सम्मासति'। ओशो प्रेमियों, अपने सद्गुरु के संदेश को भूल मत जाना। डूबो सुरति में, राम नाम में, सतनाम में।

परमगुरु ओशो द्वारा 'अंतर्वीणा' नामक पत्र संकलन की किताब में से एक पत्र आपको पढ़कर सुनाती हूं जिससे अनाहत नाद की महिमा और सपष्ट हो सकेगी। गौर से सुनिए-

प्यारी धर्मकीर्ति,
प्रेम।
अपूर्व है आनंद-ध्यान का।
अलौकिक है अनुभूति-आनंद की।
जैसे सदा से बंद द्वार खुलते हैं।

या जैसे अपरिचित अंधकार में, सदा से परिचित सूर्य
का आगमन होता है।
हृदय की कली अचानक फूल बन जाती है।
और, प्राणों की अंतर्वीणा पर अनाहत नाद बजता है।
नृत्य करती है-श्वास-श्वास।
और, गीत गाता है-तन मन का अणु-अणु।
अनुगृहीत हो।
आह्लाद से भर।
प्रभु को धन्यवाद दे।
और, कहने दे तेरे समस्त अस्तित्व को
'प्रभु की अनुकंपा अपार है।'

-ओशो

ओशोधारा शिविरों में 'सुरति समाधि' दूसरे चरण का कार्यक्रम है जिसमें साधक अंतर्वीणा पर बज रहे अनाहत नाद रूपी मौन संगीत के श्रवण द्वारा समाधि की गहराइयों में उतरने लगता है। ओशो की जीवंत धारा में ओशो के अंतर्यात्रा के विज्ञान पर आधारित ऐसे कार्यक्रमों की संरचना की गई है कि कोई भी साधक इन समाधि-सोपानों पर एक-एक कदम चलते हुए चैतन्य के शिखर तक की यात्रा कर सकता है। ध्यान से आगे समाधि, समाधि से आगे संबोधि और फिर संबोधि के भी पार-गूढ़ आयामों में जाने की संपूर्ण साधना पद्धति निर्मित हुई है। इनमें 'सुरति समाधि' का सोपान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है।

नानक जिसे शबद, ओंकार, नाम, सतनाम, धुन, गुरवाणी, सच्चीवाणी, अनाहत, अमृत कहते हैं, संतों ने उसमें डूबने को ही सुरति या सुमिरन कहा है। सारी साधना ओंकार के नाद को पा लेने की है। नानक ने इसी के श्रवण की महिमा का गुणगान गाया है। कबीर ने भी 'अनहद-साधना' को सर्वश्रेष्ठ बताया है।

सद्गुरु ओशो ने विश्व की समस्त साधना पद्धतियों को आधुनिक मनुष्यता के लिए उपयोगी तथा सर्वसुलभ बनाया है। नानक, कबीर, सरहपा, दादू, रज्जब, दरिया, धरमदास, पलटू, जगजीवन, चरणदास, कमालसाहब, मीरा, सहजो तथा साथ ही विज्ञान भैरव तंत्र, गीता, महागीता, उपनिषदों आदि पर ओशो ने अपने सैकड़ों प्रवचनों में 'सुरति' की विस्तारपूर्वक चर्चा की है। उसकी टेक्नोलॉजी से संबंधित अनेक बहुमूल्य सूत्र दिये हैं।

'संन्यासियों का मंत्र है अनाहत'। 'निर्वाण उपनिषद्' के चौदहवें प्रवचन में ओशो ने अनाहत मंत्र का महत्त्व बताया है। कैवल्य उपनिषद् में ओम् की आणविक सूक्ष्मतम शक्ति

के विस्फोट का रहस्य बताया है। विज्ञान भैरव तंत्र में ध्यान की 112 विधियों में सर्वाधिक विधियां ध्वनि श्रवण पर आधारित हैं। ओशो ने 'तंत्र सूत्र' में ध्वनि विज्ञान की अनूठी संपदा का खजाना खोला है।

ओशो स्वयं 'नाम' के महत्त्व को प्रतिपादित करते हैं एक प्यारी कथा के माध्यम से-

पंजाब के किसी गांव में एक फकीर चिल्लाता फिरता था- 'नाम ले लो', 'नाम ले लो'! एक धनी आदमी को अपनी बेटी के विवाह के लिए गहने खरीदने थे। 'नाम'- इस नाम से एक गहना होता है वहाँ। इसी हेतु वह फकीर के पास गया लेकिन फकीर तो न मिला। उसकी दस-ग्यारह साल की बेटी मिली। धनी ने उससे नाम देने को कहा। लड़की बोली, 'ठीक है, नाम तो मैं ही दे दूंगी।' धनी ने पूछा कि दाम क्या होंगे? 'दाम का पता आपको बाद में चल जायेगा' ऐसा कहकर लड़की घर के भीतर चली गयी। काफी समय तक लड़की बाहर नहीं आयी तो उस आदमी ने भीतर झांककर देखा। देखकर वह हैरान हुआ कि लड़की एक छुरे पर धार रख रही थी। पूछने पर लड़की बोली कि मैंने अपने पिता को यह कहते सुना है कि नाम तब तक नहीं मिलेगा जब तक गरदन नहीं उतरेगी।

धनी आदमी घबराया। चीख पुकार मचाकर उसने आस-पड़ोस इकट्ठा कर लिया। तब तक फकीर भी आ पहुंचा। लोगों ने उसे पकड़ लिया और पूछा, 'यह कैसा नाम देते हो?' वह जोर से हंसा और बोला, 'नाम लेना कोई सस्ता सौदा नहीं है। मेरी बेटी को कुछ पता नहीं। इस ऊपर की गरदन से काम नहीं चलेगा। भीतर की गरदन काटनी पड़ती है। यह बड़ा महंगा सौदा है।'

निश्चित ही यह सौदा अनूठा है और करने जैसा है। सच में ही यह फकीर उस 'नाम' की बात कर रहा है, जिस 'नाम' के लिए गुरु नानक जी कहते हैं - 'नानक दुखिआ सब संसार, सो सुखिआ जेहि नाम आधार।' अर्थात् सारा संसार दुखी है। सुखी केवल वही है, जिसे नाम का सहारा मिल गया है।

ओंकार (शब्द) का निरंतर स्मरण और श्रवण ही मार्ग है। 'एक ओंकार सतनाम' में ओशो कहते हैं - 'जिसे उसकी सुरति जग गई, उसने सब पा लिया, जो पाने जैसा है।'

अतः सुरति जिसकी नहीं जगी, ओंकार का अद्भुत श्रवण जिसने नहीं किया, एक हाथ की ताली यानी साउंडलेस साउंड नहीं सुना, शून्य का संगीत नहीं जाना और जो नाम के स्मरण से चूक गया-वह नाममात्र का ही संन्यासी है।

'कानों सुनी सो झूठ सब' में ओशो के इन अमृत वचनों को ध्यानपूर्वक ग्रहण करें-

'जिस दिन नाम पूरा उज्ज्वल होकर भीतर बैठ जाता है, जिस दिन सुरति पूरी हो जाती है, उसकी स्मृति पूरी हो जाती है, उसी दिन सब हो जाता है, उसी दिन सब हो गया। उसी दिन सत्य हुआ। उसके पहले सब माया है।'

-मा प्रिया

अंतिम प्रश्न- कई पुराने एवं संबुद्ध ओशो संन्यासी अपने प्रेमी मित्रों को आपके कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। वैसे भी दिन-प्रतिदिन आपके कार्यक्रमों में संन्यासी मित्रों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। इसका रहस्य क्या है?

ओशो शैलेन्द्र : रहस्य कुछ भी नहीं है। जहाँ दीपक जलते हैं वहाँ परवाने पहुंच जाते हैं, जहाँ फूल खिलते हैं वहाँ तितलियां और भंवरे मंडराते हैं। जो थोड़े भी संवेदनशील हैं, सजग हैं, वे सत्य को पहचान लेते हैं। अहंकार की पट्टियों से जिन्होंने अपनी आंखें बांध रखी हैं, केवल वे लोग ही सत्य के सूर्य से वंचित रह जाते हैं। रहस्य कुछ भी नहीं है। जीवन का एक सहज नियम है, थोड़े से लोग आंख वाले होते हैं, भीड़ तो सदा अंधी होती है। अंधे लोग विरोध कर रहे हैं। सम्यक् दृष्टि वाले लोग सहयोग पहुंचा रहे हैं। ऐसा ही सदा से होता आया है। एस धम्मो सनंतनो।

आज तक कहीं भी ओंकारोत्तर साधना पद्धतियों पर काम नहीं हुआ है। प्रथम बार समाधि ज्ञान के बाद रहस्यलोक में डूबने की विधियों पर यहाँ श्रम चल रहा है। ओशो ने बुद्धत्व के पार जाने की तरफ भी इशारे किए हैं। उन गूढ़ आयामों में साधक-साधिकाओं को जाने की सुविधा निर्मित हुई है, इसलिए ध्यान से आगे समाधि, समाधि के आगे संबोधि तथा संबोधि के भी आगे जाने में उत्सुक मित्र देश-विदेश से चले आ रहे हैं। ओशो की मधुशाला जो खुली है। मस्तानों के कारवां चले आ रहे हैं। संवेदनशील पियक्कड़ों तक परमात्मा की शराब की सुगंध पहुंच गई है। प्यासों तक पानी की खबर पहुंचने लगी है।

अंत में हम सब मिलकर कीर्तन करेंगे, नाचेंगे, गाएंगे। अपने प्यारे सद्गुरु को स्मरण करेंगे। निवेदन है कि सभी मित्र भावपूर्वक नृत्यमग्न हों। मा ओशो प्रिया के संग गाएं।

मुझे मिल गए ओशो!
चंद पल ही लगते हैं सूरत संवारने में, लग जाते हैं कुछ दिन मूरत तराशने में।
हाँ, कई बरस लगते हैं भूलें सुधारने में, पर जनम-जनम लगते गुरु को तलाशने में।
मुझे, जिंदगी की राह में, यूं मिल गए ओशो। इक रोशनी अंधेरे में, बिखरा गए ओशो।।

जाने क्यूं बार बार उन्हीं पर नजर गई, हमने बचाई लाख मगर फिर उधर गई।
फरिश्तों से लोग बहुत हैं जहान में, पर उनको देख फिर न कभी इधर-उधर गई।

मुझे, जिंदगी की राह में, यूं मिल गए ओशो। इक रोशनी अंधेरे में, बिखरा गए ओशो।।

खुदी से भरे सर को झुकाना ही पड़ा, मायूसों को मस्ती में डूब जाना ही पड़ा।
ओशो न होते तो ये दुनिया भी न होती, खुदा बनाता क्या, उसे बनाना ही पड़ा।
वो सद्गुरु से पहली, मुलाकात क्या कहूं? इतनी गजब की सूरते-हालात क्या कहूं?
वो जादुई करिश्मा, कभी भूलता नहीं; मैं उनकी प्यारी-प्यारी, अदा भूलता नहीं।
मिटते नहीं जहन से, यूं छा गए ओशो।। इक रोशनी अंधेरे में, बिखरा गए ओशो।।

मुर्शिद को नजरों से पिलाना ही पड़ा, जहान को खुद के काबिल बनाना ही पड़ा।
अश्क जारी थे मगर जब आए ओशो, रोते हुओं को भी मुस्कराना ही पड़ा।
वो अंदाजे-बयां उनका, हाय चढ़ गया नशा! आवाज सुनके मेरा, गमगीन दिल हंसा।
हर प्रश्न का जवाब, हर बात लाजवाब; मिटते चले गए मेरे, मन के सभी सवाल।
सांसों से भी करीब, मेरे आ गए ओशो।। इक रोशनी अंधेरे में, बिखरा गए ओशो।।

जादू सा चल गया जहाँ उनकी नजर गई, जिस पर पड़ी उसके जिगर तक उतर गई।
पत्थरों के दिल से भी आंसू निकल पड़े, ओशो की इक निगाह बड़ा काम कर गई।
वो उनकी ध्यान विधियां, चमत्कार कर गईं, अहंकार को गलाकर, निराकार कर गईं।
अंदर के आसमान में, ओंकार की ध्वनि; खुद ही में गूंजती हुई, सदा-ए-खुदा सुनी।
मंजिल का रास्ता मुझे, दिखला गए ओशो।। इक रोशनी अंधेरे में, बिखरा गए ओशो।।